सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 3

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष-शास्त्र

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला 13 से 14 भाग
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर-मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्री ... ज, श्री ... भरदेशगढ़, ...

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

तृतीय भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु०, मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

द्वितीय भाग में छटे सूत्र का व्याख्यान चल रहा था अब आगे प्रारम्भ करते हैं।

अर्थों के परिचय रूप में अधिगम की आवश्यकता—आत्मा को संसार से पार करने वाला ज्ञान कितनी तरह से करना है? जो मोक्ष मार्ग के प्रयोजनभूत हो उसी को कहते हैं ७ तत्त्व। तो इन सब बातों का परिचय हमको होता है प्रमाण और नयों से। ज्ञान से होता ना परिचय। जो समस्त अंशों को ग्रहण करने वाला ज्ञान है सो नय है। इसमें ज्ञान है, इससे पहले कुछ व्यवहार होता है तब ज्ञान के लिए प्रवृत्ति होती है। सो चार निक्षेपों का व्यवहार के लिए जानना आवश्यक है और प्रमाण नयों को समझना ज्ञान के लिए आवश्यक है। इतना बताया गया था। अब फिर भी जानने के उपायों को बता रहे हैं। पहले तो बहुत संक्षेप में कहा गया था कि प्रमाण और नयों से तत्त्व का अधिगम होता है अब इतने से ही जो शिष्य नहीं समझ पाते उनको कुछ और विशेष कहना चाहिए। तो ऐसे मध्यम प्रतिपत्ति को रुचि वाले शिष्यों को समझाने के लिए आचार्य महाराज सूत्र कहते हैं—

"निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः" ॥ ७ ॥

छह अनुयोगों द्वारा वस्तु परिचय—इस सूत्र में अनुवृत्ति आएगी अधिगमः की और किसका अधिगम, ऐसा समझने के लिए अनुवृत्ति लेना है "तत्" की। जैसे तन्न्यास। तो अधिगमः इसका अर्थ जानन है, तो ऐसी दो अनुवृत्ति आने पर अधिगमः और किसका अधिगमः ऐसा समझने के लिए अनुवृत्ति लेना है तत् की। जैसे तत्न्यास, उसका न्यास है, उसी प्रकार अधिगमः उसका जानन है। ऐसी दो अनुवृत्ति आने पर सूत्र का अर्थ होता है कि निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण स्थिति, और विधान, इनसे जीवादिक तत्त्वों का अधिगम अर्थात् परिज्ञान होता है। निर्देश—वस्तु के स्वरूप का थोड़ा प्रतिपादन करना वह निर्देश कहलाता है। स्वामित्व जो निर्दिश्यमान वस्तु है वह किसका है? अथवा उसका स्वामी कौन है? यह जानने के लिए एक जिज्ञासा बनती है। मेरा अधिकारी पात्र कौन है? मेरा स्वामी कौन है? ऐसी जिज्ञासा होती है। तो उसका समाधान दिया गया स्वामित्व अनुयोग से। फिर प्रश्न हुआ कि निर्दिश्यमान तत्त्व किस साधन से बनता है? उसकी उत्पत्ति का कारण क्या है? तो कैसा है साधन? यह सब समझना है साधन अनुयोग से और ये सब काम होते किससे हैं? तो अनुयोग बताया अधिकरण 'और' कितने काल में होता है? सो बताया स्थिति और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह निर्दिश्यमान वस्तु कितने प्रकारों में हुआ करती है, उसे कहते हैं विधान शब्द से। यहाँ भी तो किसी चीज का परिचय करना होता है तो कितने प्रश्न होते हैं? कोई वस्तु रखी। मान लो एक घड़ी रखी। यह घड़ी है, देखते ही जान गए, बताने से जान गए। तो उसके बारे में कोई प्रश्न होने पर उसका परिचय भला हो पाता है। घड़ी किसकी है? कैसे बनी? कहाँ है, कितने समय तक टिकेगी। गारन्टी भी लिखी होती है। और इस तरह की घड़ियाँ कितनी तरह की होती हैं। तो कोई प्रकार जानने से घड़ी का परिचय अच्छा होता है तो निर्दिश्यमान के जो तत्त्व हैं, उनका भी इतनी प्रकार से परिचय कराया जाता है।

सूत्र में प्रथम निर्देश शब्द रखा जाने का कारण निर्देश, स्वामित्व, साधन अधिकरण स्थिति, विधान ॥ ७ ॥ शब्द शास्त्र की नीति के अनुसार इन निर्देश, स्वामित्व, साधन, स्थिति, विधान इन ६ शब्दों में सबसे पहला शब्द आना चाहिए था स्थिति। शब्द शास्त्र यह बतलाता है कि जिसमें थोड़े तो स्वर हों और जो इकारान्त हो, जिसे कहते हैं स्वन्त हो अर्थात् इकारान्त उकारान्त शब्द हो और थोड़े जिसमें स्वर हों उसका प्रयोग पहले बोलना चाहिए। जैसे लोक व्यवहार में भी दो लड़कों को बुलाना हो और वे दोनों लड़के एक समान हों प्रायः तो उनका जो नाम है, उनमें जो छोटा नाम हो, जिसमें थोड़े स्वर हों वह नाम पहले बोलने में आता है, और जिसका बहुत बड़ा नाम हो उसे बाद में बुलाते हैं। कुछ ऐसी एक प्राकृतिक बात है। सबको अनुभव होता। व्यवहार में भी आया होगा? जैसे मानो दो बच्चे हैं—एक का नाम है पप्पू और एक का नाम है कल्याणराय, तो बोलते समय यह कहा जाएगा कि पप्पू और कल्याणराय को बुलाओ। ऐसा कहना एक प्राकृतिक बात है। जिसमें ऐसा कहने में थोड़ा अटपटा सा लगता कि कल्याणराय पप्पू को बुलाओ। जो थोड़े स्वर वाले हों उन शब्दों को पहले बोलने में भला लगता है, और स्थिति में केवल दो ही स्वर हैं। अन्य सब में तीन-चार ऐसे स्वर पाये जाते हैं और साथ ही इकारान्त शब्द है तो इसको पहले कहना चाहिए था। स्थिति को बोला बहुत बाद में। ऐसी एक शब्द शास्त्र के जाननहार के मन में शंका हो सकती है, लेकिन यह शंका ठीक नहीं है, इसका कारण यह है कि जहाँ दो ही बातें हों वहाँ तो प्राकृतिक व्यवहार होता है ऐसा कि जिसमें अल्प स्वर हों उसे पहले कहना और जहाँ ज्यादह स्वर हों उसे बाद में कहना। जैसे मानो ६—७ लड़कों को बुलाना है तो स्मृति के अनुसार ज्यों-ज्यों नाम ध्यान में आयेंगे त्यों त्यों बुलाया जाएगा, उनमें यह छटनी न बनेगी कि जिसका नाम छोटा हो पहले उसका नाम पुकारा जाए। दो में तो बन जायेगा मगर जहाँ बहुत को बोलना हो तो वहाँ यह बात नहीं बनती। तो यहाँ तो ६ अनुयोगों का वर्णन है। वहाँ अल्प बाहु स्वर को बात ठीक नहीं बैठती। साथ ही प्रयोजन भी तो समझना चाहिए कि आखिर इन ६ को समझाया क्यों गया? प्रयोजन है परिचय का और परिचय में होता है कोई क्रम। अटपट परिचय कराने की पद्धति नहीं है। तो वह क्रम भी ध्यान में है और यह बहुत संख्या है ऐसी स्थिति को प्रथम कहने की कोई आपत्ति नहीं आती। तो ये ६ अनुयोग बने—निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान। इन सब में प्रथम निर्देश कहना ही आवश्यक रहा। किसी चीज का नाम लो निर्देश में रखो किसके बारे में कुछ कहना है ऐसा प्रमाण में रखो तब ही तो उसके परिचय की बात चलेगी। मान लो परिचय तो कर रहे हैं, पर किसका कर रहे? वह नाम कुछ नहीं। कई ऐसे छोटे उपन्यास लिखे जा सकते हैं कि बात बहुत कह डालें, पर अर्थ कुछ नहीं निकलता। क्योंकि उसमें कोई मूल जड़ निर्देश आदिक रखा ही नहीं गया। चाहे आप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाषण करे या गप्प लगायें, कुछ भी करें, निर्देश की बात न रखें और करें तो कर सकते क्या ? उसमें कुछ मतलब निकलेगा क्या ? किसी की निन्दा करना। निन्दा की खूब बात बोलते जाओ और किस व्यक्ति की बात कह रहे हैं उसका नाम ही नहीं रखा तो उसमें सुनने वाले को भी मजा नहीं आता। जो निन्दा के रुचि के लोग हैं उन्होंने व्यक्ति का नाम रखा ही नही कि इसकी बात कह रहे हैं, तो उन्हें कोई आनन्द नहीं आता। न कथा जमती न गप्प जमती। अच्छ काम के लिए, बुरे काम के लिए, सभी परिचयों के लिए सर्वप्रथम निर्देश आता है। तो इन ६ अनुयोगों से वस्तु तत्त्व को जानने के लिए सर्वप्रथम निर्देश समझना आवश्यक है।

प्रथम अध्याय में परिचय के उपायों का परिचय– देखिये ठोस काम का फल पाने के लिये उससे पहले उसका ठौर जमाने में समय बहुत लगाना पड़ता है। और बहुत समय लगाने के बाद जब फल का समय आता तो एकदम बहुत बहुत फल मिलने लगता। कोई बड़ा कारखाना खोलता है तो कारखाने से आमदनी होने की बात कई वर्ष पश्चात् है और श्रम, खर्च, समय ये सब कई वर्षों तक खूब लगाना पड़ता है। उस समय आय की कोई बात नहीं होती। खर्च ही खर्च है, लेकिन आशा लगा रखी ना कि ५ वर्ष में इस फर्म से आय शुरू हो जायेगी। ५ वर्ष तो लाखों करोड़ों रुपये खर्च ही खर्च किया। तो ऐसा खर्च और ऐसा लम्बा समय लगाने पर भी इसमें ऊब नहीं आती, उमंग रहती है कि यह करें, यह करें। तो इस ही तरह से संसार के संकटों से छुटकारा पाने की विधि के परिचय के प्रसंग में यद्यपि परिचय तो कुछ बाद में आयेगा या यों समझिये कि दूसरे अध्याय से आयेगा। जीवादिक ७ तत्त्वों का परिचय जिस पद्धति से कराया जाता है; मोक्ष जिसके लिए अभीष्ट है वह दूसरे अध्याय से शुरू होगा। पहले अध्याय में तो उसका उपाय, उसका साधन, उसकी तैयारी, उस परिचय की तैयारी। उस परिचय की तैयारी, तैयारी की बात कहने में पहला अध्याय समाप्त होता है लेकिन भव्य पुरुष को ऊब नहीं आती। और जिस श्रद्धा से वह अधिगम वाला ९ अध्यायों को पढ़ेगा उसी श्रद्धा और भक्ति से यह पहला अध्याय भी पढ़ता है; और बल्कि अधिक भक्ति और अधिक पूज्यता से पढ़ने की बुद्धि पहले अध्याय में होती है, उसका कारण यह है कि जिन उपायों ने हमको छुटकारा पाने की विधि साफ दिखायी है उसके प्रति हमें अधिक कृतज्ञ होना चाहिए। तो इन उपायों का वर्णन इसी कारण किया जा रहा कि आगे सब बातें संकेत में, संक्षेप में थोड़ा कहने के प्रयोजन को सामने रखकर यह समझ जायें कि मेरे लिए ये सब अधिगम के उपाय कहे जा रहे हैं।

छह अनुयोगों में परिचय उपायपने की सिद्धि– अब यहाँ एक बात अथवा समस्या यह आती है कि इससे पहले सूत्र कहा गया प्रमाणनयैरधिगमः इस तत्त्व का परिचय प्रमाण और नयों के द्वारा होता है। वह बात बहुत ठीक लगी 'क्योंकि ज्ञान से ही वस्तु का परिचय होता है, और ज्ञान का ही नाम है परिचय कराना और वह है प्रमाण और नय। सर्वांशमुखी ज्ञान को प्रमाण एक देश ग्राही ज्ञान को नय कहते हैं, और बिल्कुल सही बात है कि ज्ञान के द्वारा ही इसका परिचय होता है। तो बात वह ठीक थी और अब यह चित्त में आया गुरु महाराज के कि कुछ विशेष रूप से जीवों को समझाया जाय। केवल एक प्रमाण नय जैसी दो चीजों को जो न समझ सकें उनको समझ बनाये इसके लिये यह ६ अनुयोग वाला स्थूल सूत्र कहा। लेकिन विरोध यह आता है कि जानकारी तो वास्तव ज्ञान से ही होती है, प्रमाण और नयों से। निर्देश स्वामित्व आदिक ये कोई ज्ञान तो नहीं हैं। साधन, अधिकरण, स्थिति ये कोई ज्ञान के नाम हैं क्या ? और जानकारी होती है ज्ञान के ही द्वारा तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मध्यम प्रतिपत्ति की रुचि वाले शिष्यों को समझाना था तो प्रमाण और नय के उपभेद बनाकर समझाते तो वह तो थी ठीक बात, क्योंकि प्रमाण और नय के कुछ भेद करके बताना वह ज्ञान की ही तो क्रिया कहलाती। ज्ञान से ही जानकारी होती, और ज्ञान के भेद बताकर उनसे जानकारी कराना, यह तो कहना एकदम ठीक था आचार्य महाराज का, कदम, लेकिन यहाँ वर्णन किया निर्देश स्वामित्व आदि, इसमें कहीं ज्ञान होता ? यह खुद जड़ है, ज्ञान नहीं है, तो स्वामित्व क्या ? कोई ज्ञान का नाम है क्या अधिकरण, अवधि आदि ज्ञान है ? कमरे में मैं हूँ तो उस कमरे से क्या जानकारी बनती ? जानकारी तो ज्ञान से बनती। तो ऐसा विरोधात्मक कथन किया यह युक्त नहीं जचता। प्रमाण और नयों के द्वारा अधिगम होता है, यह ठीक जचता है। प्रमाण और नयों के कुछ भेद करके उनके द्वारा बताना भी ठीक था, पर यह तो बिल्कुल अप्राकृतिक बात हो गई। इस समस्या के सुलझाने के लिए विचार करते हैं लोक व्यवहार में, यह बात लोगों को अनुचित नहीं जचती। इन ६ अनुयोगों की तरह पद्धति से जब समझते हैं तो झट समझ में आता है, और इस परमार्थ ज्ञान की प्रक्रिया में भी अनुभव से तो विरोध नहीं जचता। होता है ना बराबर ज्ञान। किसी का परिचय करना हो, सम्यक्त्व का परिचय करना है तो पहिले सम्यक्त्व का स्वरूप निर्देश करिये फिर उस सम्यक्त्व का स्वामी कौन है ? यह बताइये सम्यक्त्व में साधन क्या है ? सम्यक्त्व किस-किस पर्याय में है, किस किस साधन में है और ऐसा सम्यक्त्व कितने ढंग में होता है, बराबर ऐसा जानने में सम्यक्त्व का बहुत ज्ञान होता है। तो बात भी ठीक लग रही। इसका परिचय भी होता है और वैसा काम भी कर रहे हैं मगर समस्या फिर भी यह सामने खड़ी है कि परिचय तो साक्षात् ज्ञान के द्वारा होता है, और ये कोई ज्ञान के भेद हैं नहीं। तो इसके द्वारा परिचय कैसे कराया जाता है ? उत्तर—भाई समझने से दो बातें ज्ञात होती हैं—एक तो यह कि यद्यपि पदार्थ का ज्ञान परिचय ज्ञान से ही होता है, यह कहलाता है अव्यविहित साधन। साक्षात् ज्ञान से ही इसका परिचय होता है, मगर उस ज्ञान के किए जाने में यह निर्देश स्वामित्व साधन आदि से किसी ज्ञान का सम्बन्ध करके बताया जाता ना सो वह सम्बन्ध बनता है व्यवहित कारण अर्थात् साक्षात् कारण ज्ञान है और ज्ञान इस विषय को लेकर जानता है तो परिचय होता है, आखिर कुछ प्रयोजन भी तो है। ये निर्देश स्वामित्व आदिक हैं विषयभूत और इनको दृष्टि में लेकर ज्ञान बनाया तो दार्शनिक विधि से ये हो गये कारण, निर्देश स्वामित्व आदिक और ज्ञान हो गया कार्य। तो कार्य में कारण का उपचार करके देखें तो यह भी ज्ञान कहलाता है, निर्देश आदिक जो ६ अनुयोग हैं ये भी ज्ञान कहलाते हैं। केवल एक बात की हठ नहीं रखना है। प्रयोजन भी देखो, समझाने को भूल जाय कोई और केवल एक शब्द-शब्द का अनबन सम्बन्ध करके समस्या उपस्थित कर ले तो यह कोई बुद्धिमानी नहीं है।

प्रयोजन को छोड़कर शब्दादि कला के प्रयोग में बिडम्बना प्रयोजन को छोड़कर अपनी कला बिखेरना यह कोई हितकारी बात नहीं कहलाती। एक कथानक प्रसिद्ध है कि कोई चार बड़े विद्वान पुरुष कहीं यात्रा को निकले। उनमें से एक तो ज्योतिष शास्त्र का विद्वान, एक था वैयाकरण, एक था नैयायिक और एक था आयुर्वेदिक पण्डित। तो वे चारों विद्वान एक घोड़े पर सामान रखकर यात्रा के लिए निकले। चलते-चलते रास्ते में किसी गाँव के निकट एक जंगल में ठहर गये। अब कहा देखो भाई अपने पास एक घोड़ा है, इसको किस जगह छोड़ दिया जाय ताकि वह खूब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अच्छी तरह शाम तक खाये-पिये और आगे चलने के लिए यह तगड़ा बन जाय ? इसका समाधान ज्योतिषी महाराज देंगे। तो ज्योतिषी महाराज ने कुछ ज्योतिष विद्या के आधार पर विचार करके बताया कि इसको अमुक दिशा में छोड़ दिया जाय। सो घोड़े को चरने के लिए छोड़ दिया। अब चारों विद्वानों में यह सलाह हुई कि अपन चारों में से साग-सब्जी आदिक भोजन सामग्री लेने कौन जाय ? तो निर्णय हुआ कि ये नैयायिक और आयुर्वेदिक महोदय भोजन सामग्री लेने जावें क्योंकि ये दोनों ही इसके सम्बन्ध में विशेष जानकार हैं। नैयायिक तो बड़ी-बड़ी युक्तियाँ जानते जानते हैं और आयुर्वेदिक पण्डित महोदय इसकी परख करना अच्छी तरह से जानते हैं कि कौन सी चीज स्वास्थ्य की दृष्टि से खाना योग्य है कौन अयोग्य है ? तो वे दोनों चले भोजन सामग्री खरीदने। और वैयाकरण महोदय को रख दिया रसोई बनाने के लिए। अब नैयायिक महोदय गये तो बाजार से एक पाव घी खरीद लाए। रास्ते में उनको एक शंका उत्पन्न हो गई कि पात्राधार 'घृतं' अथवा घृताधारंपात्रं, याने पात्र के आधार में घी है या घी के आधार में पात्र है। उसे बहुत-बहुत हिला डुलाकर देखा, पर उनकी समझ में न आया। एक बार परीक्षा करते हुए पात्र को आधा कर दिया तो सारा घी जमीन पर गिर गया खैर घी का नुकसान तो हो गया पर शंका का समाधान हो गया कि पात्राधारं घृत याने पात्र के आधार में घी है। नैयायिक जी इस ज्ञान विकास से बड़े प्रसन्न हुए। बाद में उस धूल में पड़े हुए घी को धूल सहित किसी तरह से पोंछ-पोंछकर लाये। अब उधर वैद्य महाराज इस विचारधारा में पड़े रहे कि कौन सी सब्जी खरीदकर ले जावें। पालक में यह खराबी, बैंगन में यह खराबी, यों अनेक चीजों में कोई भी चीज पसन्द न आयी। सोचा कि निर्दोष तो नीम के पत्ते होते हैं, उन्हीं के ले जाकर साग बनावें। सो एक दो किलो नीम के पत्ते तोड़ लाये। अब वैयाकरण महोदय ने नीम के पत्तों का साग पकाया। साग पकाते समय जब बटलोही में खद खद की आवाज आयी, भाप के कारण उस पर रखा हुआ ढक्कन गिर गया, वह खद-खद की आवाज आती रही। वहाँ वैयाकरण महोदय ने विचार किया कि इससे जो आवाज निकल रही है यह तो शुद्ध नहीं है। खद खद क्या होता है ? यह तो बिल्कुल अशुद्ध है। अशुद्ध बोलने वाला तो बिल्कुल खराब होता है। अशुद्ध बोलने वाले के मुख में धूल फेंकना चाहिए। सो वैयाकरण महोदय ने उस बटलोही में धूल फेंक दी। अब वे चारों खाने को बैठे तो खायें क्या ? नीम के साग में धूल मिला हुआ घी पड़ा हो और साथ ही उसमें धूल भी काफी पड़ी हो तो वह खाया तो नहीं जा सकता। तो भाई कोई बड़ा विद्वान हो, बड़ी कला हो मगर प्रयोजन को छोड़कर कला का परिचय रहने पर तो धोखा ही होता है, तो यहाँ प्रयोजन है अधिगम का। पदार्थ का परिचय करना है, इतना ही तो प्रयोजन है केवल शब्द शास्त्र या अन्य कलाओं का परिचय मात्र मिल जाय यह विवेक नहीं है, और फिर निर्देश स्वामित्व आदिक ये ज्ञानरूप हैं। ये ज्ञान में आये इसलिए साधन में साध्य का उपचार होता ही है और इसका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति करता ही है, तो इसके द्वारा अधिगम बतायी जाने की बात बिल्कुल सही है। तो इस विधि से ज्ञात होंगे कि ये निर्देश स्वामित्व आदिक ज्ञान के कारण हैं।

छह अनुयोगों द्वारा वस्तु का शब्दात्मक, अर्थात्मक व ज्ञानात्मक तीनों पद्धतियों सेपरिचय— देखो भैया हम जब ज्ञान की बात करते हैं तो ज्ञान के द्वारा समझे गए निर्देश आदिक ये वस्तु धर्म ही तो हैं। जिस तत्त्व को समझना है उसकी ही तो बात है स्वामित्व तो ज्ञान के कारण जाना गया सो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान के कार्य होने से ये भी ज्ञान स्वरूप ही कहलाते हैं। एक बात और ध्यान में रखना है कि यहाँ जानकारी के प्रसंग में तीन बातें समझनी होती हैं, शब्द, ज्ञान और अर्थ। जैसे कुछ भी समझना है चौकी समझना है तो चौ की ये तो दो शब्द हैं। दो व्यञ्जन हैं, दो स्वर हैं, यह तो शब्द हुआ और जो सामने रखी हुई चार पायों वाली, यह चौकी अर्थ है और इसके बारे में जो हमारा ज्ञान होता है वह ज्ञान, ज्ञान है। शब्द चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी। साधन में तीन बातें आयीं, किन्तु वास्तविकता ज्ञान चौकी की है। इसके लिये हम जो कुछ कर सकते हैं, हमारा जिससे अधिक सम्बन्ध होता है वह बात है ज्ञान चौकी। यद्यपि व्यवहार में ऐसा लगता है कि ज्ञान चौकी से हमें क्या मतलब ? उस पर न तो पुस्तक रख सकते, न कोई चीज। और बताया जा रहा है कि हमारा अधिक सम्बन्ध है ज्ञान चौकी से। तो बात यह है कि शब्द चौकी मेरे से भिन्न है और अर्थ चौकी भी मेरे से भिन्न है। यह तो भ्रम है कि मैं इस चौकी को कुछ करता हूँ। इस चौकी का उपयोग करता हूँ, इस चौकी को जानता हूँ यह भ्रम है। इस चौकी का उपयोग कर हो नहीं सकते, कारण है कि यह मेरे आत्मा से अत्यन्त भिन्न चीज है। वस्तु स्वरूप ही ऐसा है कि एक का दूसरे के प्रति कोई सम्बन्ध नहीं, न कर्तापन का, न भोक्तापन का। तो मैं जो कुछ करता हूँ अपने प्रदेशों में करता और वहाँ के पौरुष के बाद व्यवहार होता है, निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध चलता है। तो ऐसे ही ये छहों के छहों अनुयोग शब्द रूप भी हैं, अर्थरूप भी हैं, ज्ञानरूप भी हैं, और इस प्रकार की समझ बनाये बिना उसका परिचय नहीं बनता। यहाँ शब्द द्वारा तो जल्दो समझ में आ रहा निर्देश, शब्द की ही तो बात है। वस्तु स्वरूप को हा तो कहते हैं स्वामित्वादिक और जब यह ध्यान में देते हैं कि किसका निर्देश, किसकी बात ? तो अर्थात्मक तत्व उत्तर में आता है। इस तरह शब्दो से जाना और अर्थ को जाना, पर शब्द और अर्थ में जोर लगा देने वाला, मध्य में सम्राट की तरह रहने वाला जो एक ज्ञानरूप है उसके बिना ये दोनों साररहित हैं। यों यह अनुयोगज्ञा नरूप भी है, शब्दरूप भा है, अर्थरूप भी है और तीनों का ही उपाय है, यों निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान, इन छः अनुयोगों के द्वारा ज्ञान कराया जाता है। ये प्रमाण और नय से भिन्न चीज नहीं हैं यह समझना। अन्यथा वह प्रश्न सामने खड़ा रहेगा। उपाय कुछ ज्ञान ही है अज्ञान नहीं। और निर्देश स्वामित्व आदिक ये ज्ञान रूप हैं, अज्ञान की चीज नहीं। ये वस्तुतः ज्ञान के धर्म हैं। तो इस समस्या का समाधान यह है कि ज्ञान रूप हैं। ज्ञान के विषय हैं, ज्ञान इसका कार्य है, यह कारण है। अथवा जिस समय समझ रहे हैं तो निर्देशात्मक ही तो ज्ञान बनता रहता है। तो यहाँ ६ अनुयोग ज्ञानरूप हैं और इन ६ अनुयोगों द्वारा इस ज्ञेय तत्त्व का परिचय होता है। इस तरह मध्यम प्रतिपत्ति से परिचय करने की जिन को रुचि है उनको तत्त्व समझाने के लिए यह सूत्र रचा गया है।

मोह की सकल क्लेश मूलता—समस्त दुःखों की जड़ मोह है। मोह का अर्थ है भिन्न-भिन्न पदार्थों में अभेद बुद्धि करनी, यह मोह का एक मौलिक रहस्य है। मोह उत्पन्न होता कब है, जब कि भिन्न पदार्थों को एक माने। कल्पना में सम्बन्ध माने तो वहाँ मोह होता है। मोह को मिथ्यात्व भी कह सकते। मिथ्या शब्द का अर्थ है दो का मिलान। मिथ् धातु से मिथ्या बना है। मिथ् ही मैथुन हुआ। ये सब मिथ् धातु के रूप हैं। मिथ्या का अर्थ है दो को एक कहना। इसी को लोग झूठा कहते, पर मिथ्या का असली अर्थ झूठ नहीं है। वास्तविक अर्थ है दो को एक करना। दो का मिलान बताना, इसका नाम है मिथ्या। अब दो का मिलान करना, दो को एक करना यह झूठ बात है, कभी हो नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकती । तो जो हो नहीं सकती उसे करने का जो प्रयास है उसे मिथ्या कहते हैं । तो झूठ तो फलित अर्थ है, निष्पन्न अर्थ है—दो का मिलाना, दो का एक करना, दो को एक मानना । तो मोह में यही तो किया जाता है । भिन्न पदार्थों को एक करना सो मोह है । इसमें दुःख होना प्राकृतिक बात है । जब हमें परिजन मित्रजन वैभव जड़ इन अन्य पदार्थों को अपना माना तो बुद्धि यह चाहती है कि यह खुश रहे, यह अच्छा बने, यह मेरे अनुकूल खूब वृद्धि पाये, ऐसा मन चाहता है और ऐसा हो सकता नहीं । जो मैं चाहूँ सो बाहर में हो जाये ऐसा मेल ही नहीं है । हो जाये, योग बन जाये, ऐसा होने पर भी क्या यह बात गलत है ? यह तो बच्चों जैसी कल्पना है कि जैसे कोई ५०-६० मन के बोझ की गाड़ी बैल लिए जा रहे हैं, पीछे से बच्चों ने गाड़ी में हाथ लगा रखा है, गाड़ी चल रही है, बच्चे लोग थोड़ी देर को खुश हो रहे हैं । जहाँ बैल खड़े हो गए तो वे बच्चे लोग फिर बड़ा जोर लगाते हैं, कल्पनायें करते हैं कि अब यह गाड़ी क्यों नहीं चलती है ? हाँ और जोर लगाओ । मगर यह सब बात बेकार है । जब गाड़ी चल रही थी तब भी बच्चों के कारण नहीं चल रही थी, अब गाड़ी खड़ी हो गयी है तो बच्चे उसे चला नहीं सकते । इसी तरह जब यह जगत् चल रहा है, काम बन रहा है, फर्म चल रहा है, कुटुम्ब ठीक हो रहा है और जो सामाजिक बात चल रही है वह चल रही है । उसमें कारण है दूसरे जीवों का भाग्योदय—और उस प्रकार के होने की बात । अब उसमें कोई यह सोचे कि मैं कर रहा हूँ, मैंने किया, इस प्रकार कोई मिथ् करे, जोड़ करे, मोह करे तो उसका अज्ञान है और इसी कारण उसे दुःख है ।

सम्यग्ज्ञान से ही संसार संकटों पर विजय की संभवता—संसार के दुःखों से छुटकारा पाना हो तो एक ही उपाय है कि सच्चा ज्ञान बनावें । अन्दर में और भी देखें कि मेरा स्वामी मैं ही हूँ, मेरा जिम्मेदार मैं ही हूँ, मेरा शरण मैं ही हूँ, दूसरा मेरा उद्धार न करेगा । मेरा ही सही ज्ञान, सही आचरण, सही श्रद्धान हो तो हम पवित्र हो जायेंगे । उत्थान करने लगेंगे, संकटों से छूट जायेंगे । इस बात को कोई दूसरा नहीं कर सकता । हालांकि ऐसी ही चाह वाले १०-५ व्यक्ति यदि हैं तो उन्हें कहते हैं साधर्मी बन्धु । और चूँकि वही हम चाहते हैं और वही साधर्मी चाहते हैं, इसलिए वात्सल्य होना, परस्पर अनुराग होना, यह स्वाभाविक बात है और ऐसा होना चाहिए, कारण कि जिसकी धर्म में रुचि है उसे धर्मात्मा में वात्सल्य न जगे और कहो धर्मात्मा से ईर्ष्या हो जाये, धर्मात्मा से कोई छलकी बात सोचे तो धर्म में उसे रुचि नहीं है, यह बात निश्चित है अन्यथा धर्मात्मा को, साधर्मी को बजाय वात्सल्य के उल्टी प्रवृत्ति क्यों हो ? यह होता है । ऐसा होने पर भी जिम्मेदार तो हम अपने ही हैं, दूसरे के नहीं हैं । समस्त संकटों से मुक्ति पाने के लिए हम ही अपने उत्तरदायी हैं, ऐसा जानकर हमें वह पंथ अपनाना चाहिए कि जिससे समस्त संकटों से मुक्ति प्राप्त हो । देखिये — संसार के ये समस्त सुख इन्द्रियों विषयों के ये सारे सुख ये भी कपट हैं, ये ऐते खतरे हैं कि मन लुभाकर इसे बरबाद करने पर तुले हैं । जो सीधा दुश्मन हो वह उतना खतरनाक नहीं होता जितना कि अपने को सुहावना बनकर दुश्मन बन रहा हो, वह खतरनाक है । जो सीधा शत्रु है उसे तो समझ रहे कि यह मेरा विरोधी है, इससे मुझे सावधान रहना चाहिए, और जो मेरे से मिलकर रहे, मेरा मित्र सा बनकर रहे और वह विरोधी हो, वह दुःख देने वाला हो तो उसका खतरा अधिक होता है । बस ऐसा ही खतरा इस जगत् के सुख में है । देखने में सुहावने लगते, भोगने में सुहावने लगते और उस समय दिल ऐसा मग्न होता कि उस समय यह खबर भूल जाती कि यह कितने समय का सुख ? इसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस समय भी आकुलता परेशानी बसी हुयी है, सब बातें भूल जाते हैं इस जगत् के सुखों को पाकर। विजयी पुरुष वे बनते हैं जो इन सांसारिक सुखों के धोखे में नहीं आये। तो इन सब कल्याण की बातों को पाने के लिये आवश्यक है सम्यग्ज्ञान। सच्ची जानकारी बनावें।

ज्ञानमात्र स्वरूप की भावना में समस्त त्रुटियों का परिहार— एक बात और समझना है कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान सिवाय इसमें और कुछ नहीं है। जो कुछ है वह सब इस ज्ञान के साथ ही समृद्धि नाम रखता है। मैं ज्ञानमात्र हूँ। तो कर सकूँगा तो ज्ञान का ही काम कर सकूँगा। अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। भोग सकूँगा तो ज्ञान का व्यापार ही तो भोग सकूँगा, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं भोग सकता। गड़बड़ होता हो तो भी ज्ञान का विकल्प ही करूँगा, ज्ञान का विकल्प ही भोगूँगा। समाधान रूप बनूँ। अच्छा होऊँ तो वहाँ भी ज्ञान की वृत्ति ही करूँगा, ज्ञान की वृत्ति ही भोगूँगा। इसके अतिरिक्त और कुछ करने में, भोगने में, मैं समर्थ नहीं हूँ। वस्तु स्वरूप की सीमा ही ऐसी है जब कषायें होती हैं तो कषायें तो कर्म निष्पन्न हैं, कर्म परिणति हैं, कर्म का अनुभाग है, कर्म का रंग है। ज्ञान उसमें उलझ गया। ज्ञान का तद्रूप विकल्प किया जब यहाँ भी बहुत से मिस्मरेजम का खेल दिखाने वाले ऐसे लोग होते हैं कि बड़ा आश्चर्य पैदा करते हैं तो फिर कर्म का मिस्मरेजम इतना अद्भुत खेल दिखाये तो इसमें आश्चर्य क्या? कर्म का रंग आया, ज्ञान उलझ गया, इसकी परिणति, इसका अनुराग इसकी कल्पना में इसका व्यवहार सब दुःखों को फिर खरीद लेता है। एक बार मिस्मरेजम का खेल हमने अपनी आँखों देखा है, उस समय मेरी उम्र करीब १० वर्ष की होगी, मैं पढ़ता था। तो सामने मैदान में कोई एक व्यक्ति खेल दिखा रहा था। तो बच्चों की आदत खेल देखने की बहुत होती है। वह दिखाने लगा खेल। खेल तो उसने बहुत से दिखाये, पर उनमें से एक मुख्य खेल यह दिखाया कि वह अपने हाथ में एक डिब्बा लिए घूमता रहता था वह लोगों के सिर पर रखी हुयी टोपी, पगड़ी आदि से बहुत से रुपये अपने डिब्बे में गिराता जाता था। ठीक सच्चे जैसे रुपये खन खन करके गिराकर अपने डिब्बे में डालता जाता था हमार देखने में यह बात न आयी कि वह डिब्बा कितना भर गया था रुपयों से और कितना खाली रह गया था। जब वह सारे खेल दिखा चुका तो सभी से दो दो चार चार पैसा माँगने लगा। उस समय मैं वहाँ पर खड़ा खड़ा यह विचार कर रहा था कि देखो इसने जब सबकी कमीज, टोपी, पगड़ी आदि हिला हिलाकर बहुत से रुपये अपने डिब्बे में भर लिया तो फिर यह बाद में दो दो चार चार पैसे लोगों से क्यों माँग रहा है? यह भी खेल मैंने देखा। सुना है कि मिस्मरेजम का खेल दिखाने वाले लोग किसी बच्चे के दो टुकड़े करके दिखा देते हैं और थोड़ी ही देर में उसे फिर जोड़ देते हैं कहीं टुकड़े नहीं करते दृष्टिबंध करते हैं। और ऐसे भी खेल दिखा देते कि जो चीज यहाँ नहीं है उसे भी वे मंगाकर दिखा देते हैं। तो ऐसे ऐसे बड़े बड़े चमत्कार ये मनुष्य दिखा देते हैं तो फिर जो यह अनादि काल से जीव के साथ कर्मों का मिस्मरेजम लगा हुआ है और उसमें इस जीव की बुद्धि विपरीत हो गयी है, इसके ज्ञान में नजरबन्दी हो गयी है, ज्ञान का तिरस्कार हो गया है, इन बाह्य विषयों में लग रहा है, प्रीति करने लगा है तो अब इस चक्कर में जीव है तो इसमें आश्चर्य क्या? यहाँ भी यह जीव बस ज्ञान का विकल्प, ज्ञान की उलट पलट करता है, भोगता है। तो जरूरी है कि हमारे ज्ञान की उलट पुलट बन्द हो जाये तो हम आज आनन्द में हैं। वह उलट पुलट बन्द कैसे हो? उसके लिये चाहिये सम्यग्ज्ञान।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक सुगम कार्य और उसका अनन्त फल—वस्तु के स्वरूप को सत्य समझ लें तो मोह मिटेगा, दुःख मिटेगा। पर पदार्थों में जो इतनी गृद्धता आयी, तृष्णा का भीतर में भाव लगा है, जो विकार है। गृद्धता करने से कहीं वैभव नहीं बढ़ता। उदयानुसार वैभव बढ़ता है। और अच्छा उदय तब आता है जब कोई गृद्धता न रखे, तृष्णा न रखे। तो पुण्य भी बढ़े, वैभव भी बढ़े। तो जो बेकार चीज है, जो इस कर्ममदारी ने हम सबको एक उल्लू बना रखा है, बेवकूफ बना रखा, विपरीत बुद्धि वाला कर रखा, हम उसका रहस्य जान लें तो हम सुलट जायेंगे। तो वस्तु का सही ज्ञान करना यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है जीवन में। यह न कर पाया तो चाहे वैज्ञानिक पद्धतियों से कुछ से भी कुछ कर डाला तो भी मेरे लिए क्या ? रहा यह कि लोग नाम लेंगे कि यह बड़ा वैज्ञानिक हुआ। भागा बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ, और और भी बड़े वैज्ञानिक हुए, नाम हो गया, कीर्ति हो गयी, यश हो गया, पर उस कीर्ति और यश से इस आत्मा का क्या होता है ? उसको क्या मिलने का है ? रही जीव के यश की बात, जा विरक्त है, ज्ञानवान है, वह थोड़ा भी काम करे तो उसका बड़ा यश फैलता है और जो ज्ञानी नहीं है, विरक्त नहीं है वह बड़ा श्रम करे, बड़ी मजदूरी करे तो भी उसकी कीर्ति नहीं है। तो क्या वह तन, मन, धन, वचन की चेष्टा पर निर्भर है ? सब चमत्कार इस आत्मा के विशुद्ध भाव पर निर्भर है। चाहे लोक वैभव हो, मोक्ष मार्ग हो, यश कीर्ति हो, जितनी भी समृद्धि आप कहें सारी समृद्धि इस आत्मा के विशुद्ध भाव के चमत्कार में है। कितनी बड़ा सुविधा है हम आपको कि काम एक करना है और अनन्त आनन्द मिलेगा। क्या ऐसा भी कोई रोजगार देखा कि काम तो जरा सा बतावें, आराम का काम करो, बैठे बैठे का काम करो और फल पावोगे अनन्त समृद्धि। ऐसा भी दुनिया में कोई रोजगार है क्या ? हाँ है, वह रोजगार यह ही है कि आत्मा के सहज स्वरूप को जानें, उसको देखते रहें, आराम हो, विश्राम हो, आनन्द मानो, एक ही काम है और पावोगे क्या ? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति (अनन्त वीर्य) और अनन्त आनन्द, और व्यवहार दृष्टि से समवसरण, इन्द्रों की सेवा, सर्वोत्कृष्टता, पूज्यता——……। पावोगे कितनी ही बातें और करने को कितना बताया कि अपना ज्ञान अपने में रहना यह ही एक विशुद्ध भाव है। काम इतना सा और फल इतना बड़ा मिला। तो जो बड़े-बड़े फल चाहने वाले लोग हैं वे आयें ना इस काम में, सर्व सिद्धि होगी।

सप्तम सूत्र के शब्दों के अर्थ का अनुविधान सम्यग्ज्ञान ही एक अमोघ उपाय है। सर्वोत्कृष्ट वैभव है, वह परिचय कैसे हो ? इसके लिये यह सूत्र है कि इन ६ अनुयोगों के द्वारा वस्तु का परिचय होता है। सूत्र कहा गया है—"निर्देश स्वामित्व साधनाधिकरण स्थिति विधानतः" इस सूत्र में पहले तो ६ अनुयोगों के नाम लिए। ६ के नाम के आगे तः तस प्रत्यय लगाया, जिसका अर्थ हुआ—क्या ? "इन ६ प्रकारों से" अर्थ इतना ही है। अधिक अर्थ सूत्र का नहीं है, पर इससे कुछ समझे क्या ? बताते हैं ना, व्याकरण में उद्देश्य और विधेय, ये दो चीजें जिस वाक्य में नहीं हैं वह वाक्य क्या ? तो इस सूत्र में न उद्देश्य आया न विधेय आया। बीच में लटक गए, रह गए। निर्देश, स्वामित्व, अधिकरण, साधन, स्थिति और विधान से अब क्या समझें, क्या करें, क्या जानें, क्या मानें ? तो उद्देश्य विधेय की अनुवृत्ति होती है इससे क्या होता है ? अधिगम होता है, जानकारी होती है। तो यह अधिगम शब्द है—प्रमाण नयैरधिगमः इस सूत्र में वहाँ भी अधिगमः यह पकड़ कर रखा बुद्धि में। अच्छा, तो इन ६ अनुयोगों से जानकारी होती है। अभी भी कुछ वाक्य लम्बा सा है। यह वाक्य स्पष्ट नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता कि किसकी जानकारी है? तो उसके उत्तर दो प्रकार से हैं। एक तो ऐसा हुआ कि नाम स्थापना द्रव्य भावतस्तन्न्यासः इस सूत्र में जो तत् शब्द पड़ा है समास के भीतर उसको किसी तरह पकड़ कर यहाँ ले आयें, थोड़ी कठिनाई तो होगी उसको पकड़ कर लाने में क्योंकि तन्न्यासः समास में तत् आ गया। स्वतन्त्र पद नहीं है वह --तत् इसलिए थोड़ी कठिनाई है, मगर कुछ बात है, अर्थवान है, सब हो जाता है, प्रयोजनवश से सामान्य अन्दर पड़े हुए शब्द को भी खींचकर ला सकते हैं और उसकी विभक्ति बना सकते हैं एक यह उपाय बना लिया तो सब समस्या हल हो जायेगी। सूत्र कहा था कि नाम, स्थापना, द्रव्य, निक्षेप इन चार विधियों से उन सबका व्यवहार होता है। उन सबका। तत् में किन का? जीवादिक ७ तत्त्वों का सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का, सबका। तो बस वही तत् शब्द से यह ग्रहण होता है, एक बात। और कदाचित् तकलीफ पड़े इसमें तत् न आ पायें या समास ने जकड़ रखा तो दूसरा उपाय बना लें। जितना जो कुछ पहले कहा है वह सब कुछ, सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि, जीवा-जीवाश्रवबंध सम्वर निर्जरा मोक्षाः बस उनको-उनकी अनुवृत्ति कर लिया यहाँ, इसका अधिगम होता है। यहाँ भी एक अड़चन आती है कि हमें तो अनुवृत्ति में लाना है षष्ठी विभक्ति। उनका अधिगम होता है और वह सब है प्रथमा—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि, यह भी प्रथमान्त है। और जीवा जीवाश्रवबंध सम्वर निर्जरा मोक्षाः यह भी प्रथमान्त है। और प्रथमा यहाँ बैठता नहीं तो यह प्रसिद्ध बात है साहित्यकारों में, सूत्र रचयिताओं में कि अर्थ के वश से विभक्ति का परिणाम होता है याने विभक्ति लग जाती है दूसरा ओर को ओर। जैसे दृष्टान्त लो, किसी का नाम लिया, मानो कह दिया सुकौशल कुमार, देखो सुकौशल कुमारके घर बड़े ऊंचे हैं, उसे भी बुलाओ। देखो कहा तो है सुकौशलके, वहाँ तो षष्ठी विभक्ति है, उसके ऊंचे घर हैं, उसे बुलाओ। किसको? सुकौशल कुमारको। ऐसा व्यवहार करते। तो पूरा अर्थ हुआ निर्देश, स्वामित्व, साधन स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष का परिचय होता है।

जीव के परिचय का प्रारम्भ—अब आप परिचय करिये। इस सूत्र में प्रथम निर्देश शब्द दिया है। यह यों आवश्यक है कि जब तक कोई बात न रखेंगे, निर्देश न करेंगे, कि जिसके बारे में जानकारी करना है उसे सामने न रखेंगे तो आगे की बात कैसे चलेगी? इसलिए निर्देश सर्वप्रथम आवश्यक है। निर्देश में उस वस्तु का कुछ स्वरूप बताया जाता है। क्या है यह? इस सूत्र में इतनी बात बताया है। क्या है? किसका है, किसके द्वारा है, किसमें हैं, कितने समय तक है और कितने ढंगों से है? इतनी बातें इस परिचय में आयेंगी। किसी का भी परिचय करें। एक मनुष्य का परिचय करें। क्या है? किसका है? किसके द्वारा यह निष्पन्न है या जीवित है, या रह रहा है। किसमें है, कहाँ है और कितने दिन तक है, और ऐसे ये कितने तरह के हैं। किसी का भी परिचय पाना चाहें तो इसमें ये छः प्रश्न होते हैं और इन छहों का जवाब इन प्रश्नों के अनुसार होते ही सब परिचय मिल जाता है। तो परिचय शुरू करिए। जीव का परिचय शुरू करें, जीव क्या है? इसका उत्तर दो ढंगों से मिलेगा। द्रव्यदृष्टि से, पर्यायदृष्टि से। द्रव्य दृष्टि से जीव क्या है? चैतन्यमात्र, परमपारिणामिक भावमात्र अथवा नाम कह दिया न जीव। अथवा जिसमें हम समझते हैं जीव ऐसी स्थापना, वह भी द्रव्य दृष्टि से ज्ञात होती है और द्रव्य निक्षेप में जो समझा वह भी द्रव्य दृष्टि से ज्ञात हुयो। पर्यायदृष्टि से जीव के भाव ज्ञात होंगे। भाव निक्षेप तो है पर्याया-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थिकनय का विषय 'और' नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, यह है द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से। तो परिचय किया जा रहा है जीव। द्रव्यदृष्टि से जीव इस नाम वाला जिसमें समझा यह ही कहा गया और उत्तर पूर्व पर्यायों में रहने वाला कोई एक वह जीव कहा गया और पर्याय दृष्टि से पर्याय वाला जीव लिया। और औपशमिक भाव वाला जीव, क्षायिक भाव वाला जीव, औदयिक भाव वाला जीव मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी आदि किन्हीं-किन्हीं रूपों में यह जीव है, ऐसा निर्देश से समझा। अब स्वामित्व से समझिये। स्वामित्व के दो ढंग होंगे यह जीव किसका स्वामी है। और जीव का स्वामी कौन है, दोनों तरह से लगाओ। जीव किसका स्वामी है। निश्चय से यह जीव अपने आपका स्वामी है एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ स्वामी नहीं होता। एक पदार्थ को दूसरे का स्वामी मानना मिथ्या बुद्धि का काम है भ्रम का काम है। निश्चय से जीव का स्वामी जीव ही है, स्वात्मा ही स्वात्मा है। एक जीव का दूसरा जीव भी नहीं। जो है मेरा वह ही स्वामी है। तो यह जीव किसका स्वामी है। अपने आपके स्वरूप का। और, पर्याय दृष्टि से किसका स्वामी है? अपनी पर्याय का। अपने परिणाम का। औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औदयिक भाव इनका भी मालिक है। यद्यपि यह भाव जिस समय उस जीव के होता है उस समय जीव से भिन्न नहीं है, उसी के हो परिणाम हैं, तद्रूप ही हैं। मगर भेद दृष्टि से उसमें भेद करके जब समझाया जाता तो स्वामीपन की बात ज्ञात होती है। जैसे आग (अग्नि) किसका मालिक है? गर्मी का, उष्णता का। उष्णता अग्नि से भिन्न चीज नहीं है, फिर भी भेद दृष्टि से, भेद विवक्षा से उसे मान लिया जायेगा। यह जीव अपनी पर्यायों का स्वामी है।

अज्ञानियों के भ्रम की विडम्बना—जो बहुत अज्ञानी जीव हैं वे इस भ्रम में आकर दूसरे को बहुत सताते हैं कि यह मेरा लड़का है, मेरी स्त्री है, मेरा ही नौकर है। ऐसा क्यों किया? मारना पीटना, दण्ड देना। उनकी यह बुद्धि बनी है कि ये मेरे ही हैं और मैं इनका मालिक हूँ। अरे! दूसरा कोई इसका मालिक है ही नहीं, यह खुद अपना सत्त्व रखता है, इतना तक भी उसकी दृष्टि में नहीं कि इसका भी कोई जुदा अस्तित्व है, इसमें भी कोई दम है, स्वरूप है। यह तो मेरी चीज है, इसका मैं मालिक हूँ ऐसा मानते हैं। जैसे तेज शराब पीने वाले लोग बेहोश होकर अंट-संट बका करते हैं ऐसे ही मोह की तेज शराब पीकर ये अंट-संट बका करते हैं। जैसे शराबियों की बुद्धि ठिकाने नहीं रहता। उन्हें सन्मार्ग नहीं मिलता। चाहे सन्मार्ग शराबी को मिल भी जाय पर वह उलझन से कैसे छूटे? ऐसे ही मोही पुरुष भी उलझनों से कैसे छूटे? शराबी को कोई अपना ठौर कैसे देवे? उसे कोई अपने घर में बुलाकर तो नहीं रखता। इसी प्रकार मोही को कोई अपना ठौर कैसे देवें? तब ही तो कुछ दिन यहाँ रहता, कुछ दिन और जगह रहता। तीन लोक में भटकता फिरता। कोई जगह इस मोही की स्वीकार नहीं करती कि तुम यहीं बने रहो, भटको नहीं, तुम बड़े अच्छे हो··। सिद्ध भगवान को तो स्वीकार कर लिया, सिद्ध क्षेत्र में अब तुम रहो अनन्त काल तक। इस मोही को कोई जगह स्वीकार नहीं करती। यहाँ पैदा हुआ, और जगह पैदा हुआ, तो शराबियों को भी कोई स्वीकार नहीं करता है। मोह जैसी विपत्ति जीव पर कुछ नहीं है। मोह जैसा अंधकार जीव को कुछ नहीं है। मोह रहना ही दरिद्रता है। दरिद्रता और किसी बात में नहीं है। पैसा पास में नहीं है इसको अगर दरिद्रता कहा जाय तो सबसे बड़ा दरिद्र तो मुनि महाराज को कहो। उनके पास कुछ नहीं है। और धन सम्पदा होने से दरिद्रता मिट गई, ऐसा अगर मानते तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भला बतलाओ वह १२ वाँ चक्रवर्ती था जो नरक में गया । पानी में मरा, जो करने योग्य कार्य न था वह किया । णमोकार मंत्र लिख कर पैरों से मसल दिया । वह छह खण्ड की विभूति का स्वामी था, चक्रवर्ती था ऐसे सम्पन्न की भी ऐसी दुर्दशा क्यों हो गई ? इसलिए कि उसमें दरिद्रता भरी थी । जो दरिद्र होगा वह दर-दर भटकेगा । जो अमीर है वह दर-दर न भटकेगा । धन की अमीरी की बात नहीं कह रहे । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन समृद्धियों से जो सम्पन्न है वह अमीर है, वह न भटकेगा । जो इससे रहित है वह दरिद्र है, उसको भटकना पड़ता है । मोह जैसा अंधेरा नहीं, मोह जैसी विपत्ति नहीं, मोह जैसी विडम्बना नहीं मोह जैसा दुश्मन नहीं ।

मोह की खतरनाक सुन्दरता जो मुझे सुहाता है और मेरे को ही मार रहा है इसी को कहते हैं सुन्दर । लोग सुन्दर को ही बहुत बढ़िया बात मानते हैं । उसका पर्यायवाची शब्द देंगे अच्छा, उत्कृष्ट । मगर सुन्दर का अर्थ क्या है ? सुन्दर तो एक मोह है । मोह भाव से बढ़कर सुन्दर और दुनिया में कुछ नहीं । कैसे कि सुन्दर नाम उसका है जो सु उन्द अर अर्थात् भली प्रकार से तड़फा-तड़फाकर मारे, बरबाद करे उसे कहते हैं सुन्दर । सु तो उपसर्ग लगा है और उन्दी क्लेदने धातु है क्लेद करना, क्लेद कहते हैं तड़फा-तड़फा कर दु:खी करने को । अरच प्रत्यय लग गया, जिसका अर्थ है कि जो खूब भले प्रकार से क्लेद कराये उसे सुन्दर कहते हैं । बतलाओ जगत में सुन्दर से सुन्दर क्या चीज है ? मोह भाव । जो इस जीव को जगह-जगह जन्म-मरण कराकर भटकाकर हर एक प्रकार के स्वांग दिखाकर इस जीव की दुर्दशा करे, ऐसा यह मोह भाव है । अच्छा और जगत में घृणित पदार्थों में सर्वाधिक घृणित क्या है ? मलिन पदार्थों में सबसे अधिक मिलता क्या है ? वह है मोह । लोग विष्टा [टट्टी] देखकर नाहक ही कहते हैं कि अरे यह गंदी है, और उसे देखकर थूक भी देते हैं । जैसे मानों उसका कुछ स्वाद आ गया हो, इतनी ग्लानि करते हैं, पर यह तो बतलावो कि यह खून, यह टट्टी, यह विष्टा, यह पसेव, ये मल मूत्रादिक जो तैयार हुए हैं तो ये पहले कैसे थे ? आखिर पुद्‍गल परमाणुओं से ही तो रचा हुआ है । जब इसे शक्ल में तैयार न थे तब ये पवित्र थे, गंदगी की कुछ बात न थी । आहार वर्गणाके परमाणु थे इतने साफ, इतने स्वच्छ, इतने स्वतन्त्र, जिसको कोई पकड़ भी नहीं सकता । ठोकर भी नहीं मार सकता, ऐसे थे । अब तो पहले यह तो बतलावो कि ये जो ऐसे बने खराब पिण्ड रूप, यह किसके अशुभागमन के प्रसाद से बने ? यह मोही जीव ने जब इन परमाणुओं में पर शुभागमन हुआ तो ये परमाणु इस तरह से रच रचकर ऐसे-ऐसे बन गए । तो भला मानों किसी बच्चे का पैर खराब जगह पर पड़ गया तो लोग उसे छूते नहीं हैं क्योंकि यह नहा ले तब छूने लायक होगा, और कदाचित कोई दूसरा लड़का उस लड़के को छू ले तो उसे भी नहीं छूते, दूसरे को तीसरा छू ले तो उसे भी नहीं छूते । बताओ तो मूल में अस्पृश्य कौन है ? जिसके स्पर्श से यह दूसरा खराब हुआ, तीसरा खराब हुआ । मूल में तो वह पहला लड़का खराब है । तो ये आहार वर्गणायें जो स्कंध जो विष्टा मूत्र पसेव खून आदिक रूप बन गया गंदा हो गया यह किसके सम्पर्क से हो गया ? इस मोही जीव के । तो गंदा तो है यह मोही जीव। ये पुद्‍गल स्कंध जो खराब समझे जा रहे हैं ये दूसरे तीसरे चौथे बच्चे की तरह हैं । मोही जीव में भी जीव का अपराध नहीं किन्तु मोह का अपराध है । लो सबसे अधिक गंदा क्या हुआ दुनिया में ?…मोह !

जीव का निर्देश, स्वामित्व, व साधन अनुयोग द्वारा परिचय–तत्त्व के परिचय में अनुयोग में घटाया जा रहा है, अर्थात् ६ अनुयोग द्वार से जीव तत्त्व का परिचय किया जा रहा है। जीव है, क्या है ? द्रव्य दृष्टि से अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण ज्ञान स्वभावमय जीव है। व्यवहार दृष्टि से, पर्याय दृष्टि से औपशमिक भावमय, क्षायोपशामिक भावमय, क्षायोपशामिक भावरूप औदयिक भाव रूप यह जीव है। पर्याय दृष्टि से क्षणिक भाव के रूप में जीव का निर्देश हुआ और निश्चय दृष्टि में द्रव्य दृष्टि में सत्य सनातन ज्ञान मूर्ति अंतस्तत्त्व को जीव कहा है। सो यह जीव यह किसका स्वामी है ? तो निश्चय से जीव स्वयं जीव का स्वामी है। एक द्रव्य का दूसरा द्रव स्वामी नहीं होता। इससे एक यह शिक्षा भी व्यवहार में लेना चाहिए कि किसी भी दूसरे जीव पर, मनुष्य पर हम दवाब न डालें। दबाव दो तरह के होते हैं- १, अनुचित दबाव [२] उचित दबाव। अनुचित दबाव तो अहितकारी है और उचित दबाव वात्सल्य का सूचक है। कोई दूसरा पुरुष उचित दबाव से नहीं घबड़ाता, वह तो प्रेम का दर्शन करता है, पर अनुचित दबाव हो, जिसे कहते हैं अन्यायपूर्ण तो, ऐसा हम किसी के प्रति व्यवहार न करें। कोई किसी का स्वामी नहीं। देशों में क्रान्ति आती है। जैसे किसी दूसरे राजा का प्रबल शासन है, सेना उसके, पुरुष उसके पब्लिक पर गोलीचलाता, सबतरह की विभुता है, लेकिन ऐसे प्रभुता सम्पन्न राजा का भी जब अनुचित दबाव चलता है तो प्रजा में क्रान्ति उत्पन्न होती है, विपत्ति सहना, प्राण चले जाना तो मंजूर होता है पर अनुचित दबाव सहना मंजूर नही होता। यह सब देशों की आजादी का मंत्र है। घर में समाज में किसी भी जगह प्रेम का दबाव तो व्यवहारधर्म से सम्बंध रखता है, पर अन्याय भी हो और दबाव भी हो तो यह अनुचित है। कोइ जीव किसी दूसरे का स्वामी नहीं, और पर्याय दृष्टि से जीव अपने भाव का स्वामी है और व्यवहार से, उपचार से जिस पर कुछ समय का सम्बंध है, निमित्त नैमित्तिक संबंध है, कह देते हैं, पर वास्तविकता यह है कि सर्व जीव स्वतन्त्र हैं। अपने आप में उत्पाद व्यय करते हुए चलते हैं। किसी का किसी पर स्वामित्व नहीं है। **साधन**– जीव का साधन क्या है ? जैसे पुस्तक है तो उसका साधन क्या है ? कागज। जिससे निर्मित हो उसका साधन है स्याही आदिक। तो ऐसे ही जीव का साधन क्या है ? उत्तर सब दो-दो दृष्टियों से आयेगा। क्यों दो दृष्टियों से उत्तर आता ? क्या करें विवश हैं। वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है। केवल द्रव्य द्रव्यरूप वस्तु हो, पर्याय रूप न हो तो उसकी सत्ता नहीं रह सकती। पर्याय शून्य अद्वैतब्रह्म को माना जाने पर भी कल्पना के सिवाय और कुछ पा सका कोई ? जिसमें अर्थ-क्रिया ही नहीं वह वस्तु कैसे ? अर्थ क्रिया ही पर्याय कहलाती है। तो पर्याय बिना द्रव्य नहीं, द्रव्य बिना पर्याय नहीं। अर्थक्रिया किसमें हो ? तो यों द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है तो उत्तर भी दो-दो दृष्टियों से मिलते रहेंगे। निश्चय दृष्टि से तो जीव अपने पारिणामिक भाव से रचा हुआ है चैतन्य विशुद्ध ज्ञानमात्र। उस शुद्ध अपने सहज स्वरूप से रचा हुआ है यही उसका साधन है। यहाँ साधन भिन्न चीज नहीं है, और जीव के बारे में यह प्रश्न भी होना उचित नहीं जचता कि यह जीव किस साधन से बना हुआ है ? अरे बना हुआ हो कभी तो पूछो। इसकी सत्ता तो अनादि से है। किससे रचा हुआ है ? ऐसा प्रश्न तो ठीक है, मगर उसमें उत्तर यह देना कि अनादि से यह किसमें तन्मय है, बस उसी से रचा हुआ कहलायगा।

जीव की पारिणामिकभावसाधना का परिचय न होने से सर्वत्र भयशीलता–यह जीव पारिणामिक भाव के साधन से बना हुआ है। जो इस मर्म को नहीं पहचानता वह ही तो संसार में अपनी अरक्षा का भय बनाये रहता हाय कैसे मेरी रक्षा होगी। अरे अरक्षित हैं कहाँ सो तो बताओ।

http://www.jainkosh.org

जीव कहाँ अरक्षित है ? क्या है कोई ऐसा सम्बन्ध, क्या है कोई ऐसा प्रसंग कि जो जीव की सत्ता मिटा सके ? कोई किसी की सत्ता नहीं मिटा सकता। तो नाश यह कहाँ होता ? अरक्षित यह है कहाँ ? पर्याय की बात है। कभी कैसी पर्याय होती कभी कैसी। इस पर्याय में इष्ट अनिष्ट बुद्धि बनाये हैं, अनिष्ट पर्याय होने का नाम अरक्षा है इष्ट पर्याय होने का नाम रक्षा बना रखा है। जीव अरक्षित है नहीं, क्योंकि वह परिणामिक भाव से रचा हुआ है, वह कभी त्रिकाल भी बाहर नहीं होता। तो इसकी सत्ता में अन्तराय कभी हो सकती नहीं। 'यह भय करना व्यर्थ है कि मैं न रहूँगा, मैं न रहूँगा। अगर यह बात बन जाये तब तो इसका बड़ा उत्सव मनाना चाहिये। यह तो बड़ी अच्छी बात है कि कभी मैं रहूँ नहीं। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। जब मेरी कुछ सत्ता ही न रहेगी तो फिर मुझे ये दुःख भोगने न पड़ेंगे। दुःख अपने आप छूट जायेंगे। अगर मेरा विनाश हो जाये तो फिर इन दुःखों का भी विनाश हो जाये। पर विनाश होता कहाँ ? जो सत् है उसका कभी नाश नहीं। अरक्षा बिल्कुल नहीं है। पर्याय में इष्ट अनिष्ट बुद्धि बनकर अरक्षा का विकल्प किया जाता है। मैं पारिणामिक भाव से रचा हुआ हूँ। निश्चय से तो वह ठीक है और व्यवहार से क्या है ? व्यवहार से उस औपशमिक आदिक भावों से रचा हुआ हूँ। जो मेरे में पर्याय होती, परिणति होती उन परिणतियों से रचा जाता हूँ। प्रति समय मेरी रचना चलती रहती है। किस प्रकार की रचना चलती है जिस प्रकार के हमारे भाव होते हैं। इस प्रकार यह पारिणामिक भाव समझना निश्चय से है, और औपशमिक भाव साधन व्यवहार से रचा जाता है, पर्याय से रचा जाता है। अगर इतनी बात न मानी जाये कि यह अपनी पर्यायों से रचा जाता है तो सत्ता ही कायम नहीं रह सकती। तो उस व्यवहार से औपशमिक आदिक भावों से रचा हुआ हूँ। और उपचार से देखो तो कह सकते हैं कि मैं आहार, पान, खून आदिक से रचा हुआ हूँ। देखिये यह बात जीव में कुछ घटती नहीं है। मगर कुछ बात ऐसी व्यवहार में बन तो रही है कि यह जीव इस मनुष्य पर्याय में है, मनुष्यभव में है इस शरीर में है तो इसका साधन यह ही तो है। आहार पान न रहे तो यह मनुष्यभव साधन तो न रहेगा। आहार पान विपरीत हो तो मनुष्यभव साधन तो नहीं टिक सकता ऐसे ही उपचरित व्यवहार दृष्टि से ऐसा लोग कहते हैं कि हम तो आहार पान के बल पर टिके हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम तो पारिणामिक भाव के बल पर टिके हैं, और व्यवहार की बात यह है कि हम औपशमिक आदिक पर्यायों के बल पर टिके हैं। और, उपचार से बात यह है कि हम तो खान, पान, भोजन के बल पर टिके हैं, ऐसा भी तो व्यवहार में बोलते हैं। वह उपचार साधन है। निश्चय से पारिणामिक भाव साधन है, व्यवहार से औपशमिक आदिक पर्याय साधन है। इस साधन से मैं बना हूँ।

आत्म परिचय बिना सदाचार की असम्भवता--जब जीव को अपना परिचय नहीं है तो मिथ्या कल्पनाओं द्वारा अपना परिचय बनाये रहता है। मैं मनुष्य हूँ, मैं अमुक का मामा हूँ, मौसा हूँ, मौसी हूं, अम्मा हूं, बेटा हूं आदिक अनेक प्रकार की अपने आप में परिचय की कल्पनायें बनाता है, क्योंकि वास्तविकता का इसको परिचय ही नहीं, और इस मिथ्या परिचय का फल क्या मिलता है ? कष्ट, क्लेश, क्षोभ, अन्धेरा। यद्यपि जीव राजी है। इसी में मोह करें, प्रीति करें, राजी इसी में हो रहे हैं, मगर ऐसा राजी होने का फल क्या है ? लोगों ने घुटने टेक दिया वियोग के सामने। यदि यह वियोग न लगा होता इस जीव के साथ तो ये पुण्य वाले जीव इस संसार को लपेटकर अपने बगल में रख लेते, लेकिन इस वियोग से हैरान हो गए। बड़े बड़े आदमी तो उनकी जो एक कल्पना है, मौज है,

http://sahjanandvarnishastra.org/

राजी होते हैं, सो पुण्य का उदय है और यहाँ भीतर में अज्ञान की प्रेरणा है, सो होता है राजी। गुजरात में एक महिला ने बताया कि यहाँ सिर के बाल गूथने की १) से लेकर १००) तक मजदूरी है। तो किसी ने कहा कि अच्छा जरा हमें भी कभी दिखाना, देखें तो सही कि वह बालों का गूंथना किस प्रकार का होता है। तो उसने कहा कि ऐसी कोई कोई ही भाग्यशाली महिलायें हैं जिनके १००) में सिर के बाल गूंथवाये जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। तो हमने कहा कि हाँ होंगी कोई ऐसी भाग्यशाली महिलायें जिन्हें भूख न लगती होगी, डाक्टर ने खाने को मना भी कर रखा होगा। आखिर खाने पीने का कुछ खर्च न होगा तभी तो वे बाल गुथवाने में १००-१०० रु० तक खर्च कर डालती हैं। तो प्रसाधनों में, अलंकारों में, लौकिक इज्जत में अनेक अनेक बातों में जो राजी होते हैं इसका फल अच्छा नहीं है। राजी होना है तो अपने आत्मा के शुद्ध सत्य स्वरूप को देखकर प्रसन्न होओ। यह तो लाभ देगा बाकी विनाशीक चीजों के समागम में रुचि होना अन्धेरा है, अज्ञान है, कष्ट है, विडम्बना है। विवेकीजन इसमें राजी नहीं होते।

अधिकरण अनुयोग द्वारा जीव का परिचय ६ अनुयोगों द्वारा जीव तत्त्व का परिचय कराया जा रहा है, जिसमें निर्देश, स्वामित्व और साधन इन तीन अनुयोगों का वर्णन हुआ। अब अधिकरण द्वारा जीव की पहिचान कीजिये। अधिकरण अनुयोग से जीव का परिचय करने में प्रश्न यों बनता है कि यह जीव कहाँ रहता है। देखो किसी भी मनुष्य का परिचय करने के लिये सर्वप्रथम जिज्ञासा बनती है ऐसी कि यह कहाँ रहता है? कोई त्यागी आया हो, कोई मेहमान हो उसके बारे में यह मन में आता कि यह कहाँ रहता है? अब त्यागी कहाँ रहता है, इसमें किसी को क्या मतलब? त्यागी तो त्यागी है मगर उसके बारे में भी जब तक यह ज्ञान नहीं बन पाता तब तक दिल में खटक सी बनी रहती है। तो जीव का परिचय करने के लिये इस जिज्ञासा का समाधान होना आवश्यक है कि यह जीव कहाँ रहता है? किसमें है यह जीव? इसका आधार क्या? अधिकरण क्या? तो जीव का आधार निश्चय से तो अपने ही प्रदेश हैं। कहाँ रहते हो भाई? तो मैं अपने में रहता हूं। अब व्यवहारी जीवों से सही-सही उत्तर देंगे तो ये लोग पागल कहने लगेंगे। आप कौन हैं? शुद्ध ज्ञायक भाव। आपका क्या व्यापार है? ज्ञानवृत्ति। आपके साधन क्या हैं? पारिणामिक भाव और आप रहते कहाँ हैं? अपने आप में। व्यवहारीजनों को तो यह बहुत अटपट उत्तर लगेगा। कोई व्यवहार ही नहीं बन सकता, पर वास्तविकता यह ही है। निश्चय से मैं कहाँ रहता हूं? अपने प्रदेशों में। जो मुझ आत्मा के प्रदेश हैं असंख्यात प्रदेश वे मेरे आधार हैं। ये प्रदेश अलग नहीं हैं कि जैसे सन्दूक है और उसमें कपड़े रख दिया तो कपड़े का आधार सन्दूक है। तो इसी प्रकार आत्मा के प्रदेश के हों और उसमें फिर आत्मा आया हो सो नहीं, किन्तु जो आत्म सर्वस्व है, जो ज्ञानादिक गुण हैं इसी का ही जो अस्तित्त्व है, बस जो कुछ है वही प्रदेश है। प्रदेश कोई क्षेत्ररूप अलग हो और आत्मा के ज्ञानादिक गुण उसमें रखे जाते हों, ऐसा कुछ अलग नहीं है। समझाने वाले आचार्य संतों ने कैसा युक्ति से समझाया—एक अवक्तव्य अखण्ड तत्त्व को। तो ज्ञानादिक गुणों के, आत्मा के स्वरूप के आधार हैं वे ही गुण, उसी को ही प्रदेश बोल रहे हैं। वे प्रदेश असंख्याते हैं। असंख्याते कोई अलग अलग हों और गिनते हों, ऐसा नहीं। वह सब एक ही विस्तार है। एक ही क्षेत्र है, पर यह इतने में फैल जाये कि जितने को आकाश प्रदेश के माध्यम से गिना जाये तो वह असंख्यात हो जाये। यों असंख्यात प्रदेश आत्मा के प्रदेश हैं। आत्मा का आधार, आत्मा का आकार असंख्यात प्रदेश है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मा की परमार्थतः निराकारता व स्वाधारता—भैया ! आत्मा का खुद का आकार कुछ नहीं। आत्मा ने अपने आप अपनी सत्ता के कारण कोई आकार स्वीकार किया हो, बना हो, ऐसा कुछ नहीं हैं। अनादि काल से यह जीव देहों में बसा हुआ चला आ रहा है, कर्मोदय अनादि से चले आ रहे हैं। उन कर्मों द्वारा निष्पन्न जो शरीर है उस शरीर के आकार ये जीव के प्रदेश रहे। आज तक का इतिहास यह है, और जब मुक्त होगा तो जिस पर्याय से मुक्त होगा उस शरीर के प्रमाण आकार रहेगा। पहले तो आकार सहेतुक रहा, कर्म निष्पन्न। शरीर जितना था उतना घटता रहा, बढ़ता रहा और जब मुक्त हुआ तो जिस आकार से मुक्त हुआ उस आकार से घटने का कोई कारण न था। बढ़ने का कोई कारण न था। तो जितने प्रदेशों में रहता हुआ यह मुक्त हुआ बस उतने ही प्रदेशों में निश्चल विस्तार में हो गये। तो कर्म निष्पन्न देह के आकार प्रमाण होने पर भी देह के प्रमाण का अन्वय करने पर भी ये जीव के प्रदेश न हीन होते न अधिक होते। जैसे हाथी के शरीर को छोड़कर जीव चींटी के शरीर में आया तो उस चींटी के शरीर प्रमाण वह आत्मा बना, पर प्रदेश न कम हुये न बढ़े। चींटी के शरीर से निकल कर बड़ी अवगाहना वाले मगर मच्छ के देह प्रमाण पहुँचा तो भी वहाँ प्रदेश अधिक नहीं हुए। कैसा इसका भण्डार है ? कैसा इसमें भावों का महल है निजी महल, जिसमें यह सुलक्षण पूर्वक बराबर रह रहा है। कैसा विचित्र महल है। किसी कारीगर की कल्पना में भी आ सकता क्या ? ऐसा अनोखा महल। बढ़ गया तो भी प्रदेश नहीं बढ़े, घट गया तो भी प्रदेश नहीं घटे। कैसा संकोच हो गया, कैसा विस्तार हो गया ? इसकी सत्ता रहे। यह असंख्यात निज प्रदेश रूप महल अपूर्व मन्दिर है। इस मन्दिर में विराज रहा है यह जीव राजा। तो जो कर्मकृत शरीर के परिमाण हो होकर भी न कम रहता न बढ़ता, ऐसे असंख्याते प्रदेश आधार हैं जीव का अर्थात् जीव निज के आधार में रहता है। सभी पदार्थों की यही बात है। जैसे आकाश कहाँ रहता है ? अपने प्रदेशों में। दृष्टान्त में तो कुछ भी दे सकते थे। परमाणु कहाँ रहता है ? अपने प्रदेशों में। और भी दृष्टान्त दे सकते हैं मगर प्रकृत बात समझने के लिये यह आकाश का दृष्टान्त बहुत अच्छा है, क्योंकि जैसे कहा – चौकी कहाँ है ? तो उसके तो अनेकों उत्तर हो सकते हैं, मन्दिर में है, काठ में है, आकाश में है···, यों अनेक उत्तर हो सकते। आकाश कहाँ है ? तो बोलेंगे कि मन्दिर में है आकाश। आकाश में है आकाश। इसलिए आकाश का दृष्टान्त दिया है। वास्तविक अधिकरण बताने के लिए। निश्चय से तो यह आत्मा अपने निज क्षेत्र में रहता है और व्यवहार से शरीरादिक में रहता है। शरीर में रह रहा है, इसका एक ऐसा आधार है जिसको छोड़कर यह कहीं जा नहीं सकता। एक पुरुष ने अपने मित्र को निमन्त्रण दिया कि मित्र जी आपको कल के लिये भोजन को निमन्त्रण है, आप १० बजे सुबह आ जाना, और देखो हम ज्यादह तो नहीं सम्हाल सकते, आप अकेले आना। अच्छा साहब। जब दूसरे दिन ठीक १० बजे वह भोजन करने पहुंचा तो वहाँ उस मित्र ने बड़ी देर तक पानी तक को भी न पूछा, खाने की बात तो दूर रही। बड़ी देर हो जाने पर वह स्वयं कह उठा कि भाई अब तो बड़ी देर हो गयी, भूख लग रही है, खाना क्यों नहीं खिलाते ? तो वह मित्र बोला - अरे हमने तो कहा था कि आप अकेले ही आना पर ···। ······अरे अकेले ही तो आये हैं। नहीं भाई, तुम अपने साथ यह बहुत बड़ा शरीर पिण्डोला भी तो ले आये हो, इसके साथ और न जाने क्या क्या झमेला साथ ले आये हो। " तो भाई सारांश यह है कि इस जीव का अधिष्ठान आधार व्यवहार दृष्टि से शरीरादिक पड़ता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थिति अनुयोग द्वारा जीव का परिचय इस जीव की स्थिति कितनी है, इस सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। जीव की स्थिति द्रव्य दृष्टि से अनादि अनन्त है। न कभी इसकी शुरूवात हुई, न कभी इसका खात्मा होगा, क्योंकि सत् है। जो है वह अनादि अनन्त होता है, तो स्वभाव दृष्टि से अनादि अनन्त है। अपने असंख्यात प्रदेशों की दृष्टि से अनादि अनन्त है और अपने सहज गुण सामान्य से अनादि अनन्त है। किन्तु व्यवहार से अर्थात् पर्याय-दृष्टि से यह जीव समय-समय में अपनी जुदी-जुदी स्थिति रखता है। पर्याय होती है क्षणिक, प्रत्येक समय में नवीन-नवीन पर्याय होती रहती है। द्रव्य अनुभव करता है पर्याय का। भले ही द्रव्य अनादि अनन्त होता है लेकिन प्रयोग अनुभव सत्ता की व्यक्ति, सत्ता का प्रयोग ये सब पर्याय द्वारा होते हैं। तो जब पर्याय मुख्य बना तो पर्याय मात्र जीव देखा, ऐसी स्थिति में कहा जायेगा कि यह जीव दो समय का है, १० समय का है, १० वर्ष का है। जहाँ जिस स्थिति पर दृष्टि जाती है। यों यह जीव समय-समय में अपनी स्थिति रखता है। बदल तो एकदम जाता है। पर्याय से पर्यायान्तर में बदल भी एकदम होती है और उसका प्रयोग भी जुदा होता है। कोई वर्ष दो वर्ष का बालक है, उसे लेकर माता सोती है, और वही बालक जब २०-२५ वर्ष का होता है तब उनके ठहरने के जुदे-जुदे स्थान हो जाते हैं। वहाँ फिर ऐसा तो नहीं माँ मानती कि यह वही बेटा है साल दो साल का। बेटा के नाते से एक होकर भी प्रयोग की अपेक्षा भिन्न हो गये। बालक था तब और प्रकार चलता, उठता था। किसी बालक से कहो कि जाओ यह पोस्टकार्ड लेटर बाक्स में डाल आओ, तो वह बालक सीधे न जायेगा। अपने हाथ पैर उछालता हुआ उछलता कूदता जायेगा, और किसी ५०-६० वर्ष के बड़े आदमी से लेटर बाक्स में पत्र डालने को कहा तो वह तो बड़े सीधे सादे ढंग से जायेगा। तो अवस्था की बात अवस्था के साथ चलती है। तो जुदे-जुदे हो गये, नया नया हो गया। उसकी स्थिति ही है। तो पर्याय दृष्टि से जीव स्थिति वाला है।

विधान अनुयोग के प्रसंग में परमार्थतः जीव का परिचय – अब छठवाँ अनुयोग है विधान। जैसे घड़ी कोई भींट में रखने की है। कोई टेबिल पर रखने की है, कोई एलार्म भी है, कोई ओटोमेटिक चलने वाली है, कोई कैसी ही है, तो जैसे उनके हजारों प्रकार हैं, ऐसे ही जीव के प्रकार देखना। वैसे परमार्थतः तो जीव के कोई प्रकार नहीं। वह तो परम पारिणामिक भाव रूप है, शुद्ध, सहज स्वभाव रूप है। जीव को गर्व कब पैदा होता जब स्वभाव से दृष्टि हटती है। पर्याय को मुख्य करता है, अपने को बड़ा मानता, दूसरों को तुच्छ मानता। गर्व में दोनों ओर से दोष है। अपने आपमें औरों से उच्चता समझ रखे यह भी दोष है। दूसरों को अपनेसे तुच्छ समझना यह भी दोष है। तो जब स्वभाव की दृष्टि हो सब जीवों को एक समान मान रहा हो वहाँ तुच्छता उच्चता का विचार नहीं चलता है। स्वभाव दृष्टि में प्रकार नहीं रहते। स्वभाव दृष्टि से वह एक ही प्रकार का है, पारिणामिक भाव रूप। जो देखा सो ही। जैसे बताया है कि जीव न प्रमत्त है न अप्रमत्त है, किन्तु वह तो एक ज्ञायक मात्र मात्र है। जो है सो है। तब अन्त में कहा गया णाओ जो सो उ सो चेव। यह नाथ तो जो ज्ञात हुआ है वही है, किसी विकार का सद्भाव बताकर भी स्वरूप नहीं बनता। और विकार का असद्भाव बताकर भी स्वरूप नहीं बनता। स्वरूप तो वह है—जो सहज स्वरूप है। जैसे बताओ चौकी का स्वरूप क्या है? मैल सहित होना चौकी का स्वरूप है या मैल रहित होना चौकी का स्वरूप है? मैल सहित तो इसका स्वरूप बताया नहीं जा सकता और मैल रहित भी नहीं बताया जा सकता। तो चौकी में जो काठ है, जो रंग है, जो रूप है, जो चौकी की प्राकृतिक बात है वह चौकी का स्वरूप है। मैल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सहित वाला स्वरूप नहीं, मैल रहित वाला भी स्वरूप नहीं है। ऐसे ही आत्मा की जितनी विशेषतायें बतायी जाती हैं उन रूप स्वरूप नहीं। जो यह सहज भाव है वह स्वरूप है। और देखने से ही ज्ञात होता है तो सहज भाव की दृष्टि से आत्मा के प्रकार नहीं। अब कोई गुण पर्याय माने और आत्मा के प्रकार न माने और स्वभाव दृष्टि करे पर आत्मा न माने तो गलत। यह मानना तो यों गलत है पर मानकर बोल रहा यह गलत है। स्वभाव दृष्टि करके बोले तो सही है। झगड़ा किसी बात में नहीं है। झगड़ा तब होता है कि व्यवहार वाला कुछ दृष्टि से बोलता है, सुनने वाला किसी दूसरी दृष्टि से सुनता है और यदि बोलने वाला जान बूझकर दृष्टि को न कहकर दृष्टि को छिपाकर बोले, जिसके दो अर्थ हैं तो यह वक्ता की बेईमानी है। जो दृष्टि है, जिस दृष्टि से बोल रहे ऐसी करुणा करके बीच-बीच दृष्टि बताते जाना चाहिये तो उसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं होता। और स्वभाव दृष्टि से देखें तो आत्मा शुद्ध सहज ज्ञान स्वभावमात्र है। कोई प्रकार नहीं है।

विधान अनुयोग द्वारा व्यवहारतः जीव का परिचय—जीव को जब पर्यायदृष्टि से देखा तो उसके अनेक प्रकार हैं। २-४-६ और अनगिनते। जैसे गति की अपेक्षा जीव ५ प्रकार के हैं नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और गति रहित। अब एक-एक बात को ले लो। नारकी ७ प्रकार के हैं। ७ नरकों में रहने वाले। फिर उन नरकों के अन्दर भी तो विशेषतायें हैं। जैसे प्रथम नरक में १३ प्रस्तार हैं तो प्रत्येक प्रस्तार में आयु का अन्तर है, दुःख में अन्तर है। तो इस तरह से इसमें भी भेद हो गए। उनके और भी प्रकार हैं। जैसे मनुष्यों में ले लो। मनुष्य पहले तो दो प्रकार के हैं—लब्धपर्याप्त और पर्याप्त। अब इनमें कितने अन्तर हो गए? लब्धपर्याप्तक मनुष्य तो निगोद जीवों की तरह कष्ट भोगने वाले हैं, यद्यपि वे संज्ञीपञ्चेन्द्रिय, मनुष्य गति का उदय है मगर हालत है एक श्वास में अठदश बार (१८ बार) जन्म-मरण होता है। काँख आदिक स्थानों से पैदा होते रहते हैं। तो उन मनुष्यों का जब कुछ स्वरूप मालूम होता है तो आप कहने लगेंगे कि मनुष्य होना न होना बराबर है। लब्धपर्याप्तक मनुष्य होकर कौन सी खासियत पायी? और खासियत तो हैं। पञ्चेन्द्रियावरण का क्षयोपशम है। मनेन्द्रियावरण का क्षयोपशम भी है, मगर ऐसे मनुष्य होने से लाभ क्या? पर्याप्तक मनुष्य तीन तरह के हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। फिर उनमें और प्रकार देने के लिये देखिये—रूस, चीन, जापान, जर्मनी, भारत में कितनी-कितनी तरह के मनुष्य हैं। उनकी भाषा में फर्क, उनके रूप में फर्क। एक ही देश में देख लो—अपने भारत देश में ही देख लो - मद्रासी, पंजाबी, केरलवासी आदि सभी जगह के लोगों में कुछ न कुछ भेद पाया जाता है। उनकी भाषा में भेद, उनके रूप में भेद, उनके स्वभाव में भेद········। अभी हमें दिल्ली में एक केरल का आदमी मिला था तो वह बड़ी अच्छी हिन्दी बोलता था। हमने पूछा - भाई आप तो केरल के हैं फिर इतनी अच्छी हिन्दी कैसे बोल लेते? तो उसने बताया कि हमारे यहाँ हिन्दी भाषा की पढ़ाई कक्षा दो से प्रारम्भ हो जाती है इसलिए हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान सभी को होता है। अब यहाँ गुजरात महाराष्ट्र वगैरह में देख लो—उनको हिन्दी भाषा कम भाती है। यह भी सुना है कि गुजरात महाराष्ट्र में चोरी कम होती है और किन्ही क्षेत्रों में ज्यादह होती है। तो यों एक ही देश में भिन्न भिन्न प्रकृति के लोग पाये जाते हैं। अभी देख लो सभी मनुष्यों के कोई तीन अंगुल की यह नाक लगी है, पर किसी की नाक किसी से मिलती-जुलती नहीं है। तो चेहरा भी किसी का किसी से नहीं मिलता है। तो यहाँ कुल भेद से, जाति भेद से भी कितने प्रकार के मनुष्य हैं। अब तिर्यञ्चों में देख लो कितने प्रकार के पशु, कितने प्रकार के पक्षी हैं। कभी अजायबघरों में देखा होगा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कितने विचित्र प्रकार के जीव जन्तु दिखते हैं। देव भी अनेक प्रकार के हैं। जो सिद्ध भगवान हैं उनमें प्रकार नहीं है किन्तु तत्त्वार्थ सूत्र लिखते लिखते आखिरी सूत्र में भेद डाल ही दिया कि क्षेत्र, काल, गति आदिक भेद से भेद कल्पना चाहिये तो इस तरह पर्यायदृष्टि से निरखते हैं तो ये जीव अनेक प्रकार के हैं। यह जीव के समझाने की बात है, बोलो गलत तो नहीं है। इन्द्रिय जाति की अपेक्षा ६ प्रकार के जीव हैं, यह कथन व्यवहार का है, अभूतार्थ का है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय उन जीवों की एक ऐसी योग्यता। शरीर का भी बड़ा सम्बन्ध। बताओ है कि नहीं यह ? झूठ तो नहीं। रहा अभूतार्थ। अब भूतार्थ न होने से हमारा उपकारी नहीं है। इसलिए उसका आश्रय न करें पर्यायबुद्धि मत बनावें। और एक सहज स्वभाव की दृष्टि से उसके आश्रय से मोक्ष मार्ग बनावें।

सर्व जानकारी करके प्रयोजनभूत का आश्रय करने में कल्याण—जो करणानुयोग के कथन हैं, व्यवहारनय की बातें हैं वे सब एकदम विरुद्ध न कहकर केवल इतना सही रीति से समझ जायें तो सम्भव है कि यह सम्यग्दर्शन के लिये सहकारी बन जाये। लिखते पढ़ते समय तो उनका उपयोग करना पड़ता है। तो मानने से हानि नहीं है। जिसमें जैसी जो बात है वैसा समझने में बुरा नहीं है, पर प्रयोजन भी समझना चाहिये। हमारा प्रयोजन है, हमारा शरण है, हमारी भलाई का मार्ग है तो एक स्वभाव दृष्टि, सहज पारिणामिक भाव अंतः प्रकाशमान। उसका जो आज परिणमन है वह अनित्य है। यह जीव की सहज परिणति नहीं, पर इसे मानें ही नहीं, यह बात तो गलत है क्योंकि वह है, पर भूतार्थ नहीं। भूतार्थ का अर्थ है स्वयं सहज जो भाव हो सो भूतार्थ। अब कोई इतना उसमें भावुक बन जाए कि जो विकार है या अन्य है वह है। है नहीं ऐसा, जो सत्य के विपरीत है, वह मान लिया जाए, वह हठ है। है सब पर उसका हमें प्रयोजन नहीं। जैसे घर में जिससे मनमोटाव हो जाता है उससे प्रीति नहीं रहती. पर इसके मायने यह तो नहीं कि वह घर में है हो नहीं। वह घर में है लेकिन उनसे बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है, इसी तरह विभाव परिणति की बात है, विभाव परिणति है पर उनका आश्रय करने से मोक्ष मार्ग नहीं मिलता, अतएव वह हमारा प्रयोजनभूत नहीं है। घर में लड़ाई हो गई, अब मानता रहे तो ठीक, नहीं मान रहा तो ठीक, उन पर कोई उपकार नहीं है, इसके मायने यह नहीं कि वह असत्य है, झूठ है। है तो है ही है। अब दृष्टि नहीं कर रहा। अनेक लोग कोई विरोधी पुरुष हैं, इसके मायने यह नहीं कि उनकी सत्ता नहीं है। भूतार्थ का आश्रय हम आपके लिए हितकारी है। यदि आप से ऐसा उपयोग बने कि भूतार्थ ही ध्यान में रहे, अभूतार्थ दृष्टि में ही न आये तो वह भला है, पर अभूतार्थ का निषेध करके भूतार्थ में चले तो वह अज्ञान अन्धकार है। तो भूतार्थ तो एक रूप है, अभूतार्थ नाना रूप है। इन्द्रिय जाति की अपेक्षा आचार्यों ने भेद बताया। तो जीव का परिचय करने में उपयोगी है कि नहीं। बराबर परिचय हो रहा है। अब परिचय से और आगे परिचय बढ़ाओ। कोई जघन्य पद का परिचय है। उसके आगे और परिचय उसके आगे और परिचय, बढ़ाते जाओ, किसी भी नये आदमी का परिचय हो तो प्रारम्भ में ऐसा परिचय नहीं बनता जो दो चार वर्ष तक परिचय होने के बाद होता है। परिचय बढ़ाओ। तो उसी तरह से अभूतार्थ का परिचय करो, करते जाओ, बढ़ाते जाओ। और अन्त में ऐसा परिचय बनाओ कि इस अभूतार्थ में जो एकत्व है उस भूतार्थ की दृष्टि करो। अभूतार्थ का आश्रय छोड़ दो। इस अभूतार्थ का आश्रय करने से कोई कल्पित आनन्द प्राप्त हो रहा है इसको छोड़ दो जो कुछ पुण्योदय के अनुसार प्राप्त होता हो उसी में सन्तुष्ट रहो। यह समझो कि दूसरों की देखा देखी धनार्जन में बढ़ने, होड़ लगाने, शौक श्रृंगार आदि करने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के लिए यह जीवन नहीं हैं। जिसका जैसा उदय है उसका वैसा गुजारा चलेगा उसका अधिक विकल्प न रखकर यह बात ध्यान में लावें कि हमारा जीवन तो आत्म-स्वभाव की दृष्टि करने और मोक्ष मार्ग में बढ़ने के लिए है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रकाश मेरे में आये, इससे जीवन सफल होगा, अन्य बातों से जीवन सफल न होगा।

ऋजुसूत्र नय के एकान्त का भाव रख कर स्वामित्व अनुयोग की असिद्धि की आशंका:—यहाँ ६ अनुयोगों की चर्चा चल रही है—निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान।इन ६ अनुयोगों से तत्त्व का, रत्नत्रय का, पदार्थ का परिचय होता है। इसमें निर्देश नामक अनुगम के सम्बन्ध कुछ परिचय दिया गया। अब आज स्वामित्व के सम्बन्ध में सुनो। स्वामित्व से ऐसा ही तो समझना होता है कि जीव का स्वामी कौन है ? किसका स्वामी जीव है ? इस तरह स्वामित्व अनुयोग से परिचय होता है तो सर्वप्रथम क्षणिकवाद का अभिप्राय रखने वाले दार्शनिक यह आशंका रख सकते हैं कि स्वामित्व अनुयोग कहना बेकार है। जगत में कोई किसी का स्वामी नहीं हुआ करता। जब एक-दूसरे के साथ स्वामित्व सम्बन्ध है ही नहीं तो स्वामित्व अनुयोग से परिचय कराने की बात सत्य कैसे हो सकती। झूठ के उपाय से सत्य कहीं ज्ञान होता है ? स्वामित्व सम्बन्ध यों नहीं कि जगत में जो भी पदार्थ हैं वे सब पदार्थ एक समय वाले हैं। कोई पदार्थ दूसरे समय रहता नहीं। कोई पदार्थ किसी से उत्पन्न होता नहीं। सभी पदार्थ अहेतुक हैं। स्वयं की उत्पत्ति है तो एक का दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता। देखो सम्बन्ध बनेगा तो इसी तरह तो बनेगा कि कोई कल्पना कर लें, अन्यथा जो वस्तु है ही नहीं उसका सम्बन्ध होता नहीं। जो स्वयं है उसके लिये जरूरत क्या ? तो अगर है तो सम्बन्ध नहीं, नहीं है तो सम्बन्ध नहीं। एक है तो सम्बन्ध नहीं, एक नहीं, तो सम्बन्ध नहीं, और ऐसा होता नहीं कि कोई पदार्थ कुछ बन पाया और कुछ नहीं बन पाया। जब पदार्थ एक समय का ही है तो वह जो होता वह पूरा होता, अधूरा कुछ नहीं होता। तब स्वामित्व अनुयोग की बात कहना बेकार है, ऐसी आशंका रख वाले को समाधान दिया जाता कि ऐसा एकान्त करना ठीक नहीं है। यद्यपि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में ऐसा ही विदित होता है कि जो जिस समय की पर्याय है वह उस समय अपने आप हुई है। उसका पूर्व से सम्बंध नहीं, उत्तर से सम्बंध नहीं, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई कार्य नहीं। ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में न कार्य कारण भाव है न जन्य जनक सम्बंध है, न विशेष्य विशेषण भाव है। वह तो एक समय की पर्याय निरखे न, इतना ही मात्र उसका विषय है। जब दूसरा कुछ निरखा ही नहीं गया तो सम्बन्ध किसका बना ? ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में यह बात सत्य है, उसका विषय है, पर इतना ही कोई एकान्त करके रह जाये तो सब झूठ है।

प्रत्येक द्रव्य में प्रत्यासत्ति के अनेक सम्बन्ध—देखा ही जा रहा है पदार्थों में। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सम्बंध है, और अगर कुछ भी सम्बंध न हो तो यह नियम कहाँ बनेगा ? ऐसी बात इस ही क्षेत्र में हुई, इस ही काल में हो, इस प्रकार का जो उत्पत्ति का नियम है वह कुछ भी सम्बन्ध न हो तो कैसे बने ? ऋजुसूत्रनय से पर्याय का एकान्त तो कर लिया कि पर्याय अहेतुक है, वह किसी से उत्पन्न नहीं होता, बौद्धों के यहाँ उसको द्रव्य बोलते हैं, पर यह क्यों हो रहा कि इस स्थान में इस जगह इस सन्तान में जानन-जानन जैसी ही पर्यायें होती हैं, और अन्य ढंग की पर्यायें नहीं होती। उसका कारण क्या है ? ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से यद्यपि पर्याय अहेतुक है, लेकिन ये पर्यायें ऐसी ही क्यों होती हैं ? ज्ञान ज्ञान होता जा रहा, नवीन नवीन पर्याय होती है। कहीं रूप रस की पर्यायें क्यों नहीं हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाती उसका कारण क्या है ? तो मानना पड़ेगा कुछ संबंध जैसे कहा द्रव्य प्रत्यासत्ति। तो सम्बन्ध तो है। सम्बन्ध बिना व्यवस्था नहीं बनती। हाँ इतनी बात कह लो कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ संबंध नहीं। यद्यपि वहाँ भी संबंध है व्यवहार से। किसी का संयोग संबंध है किसी का अन्य प्रकार है, मगर एक द्रव्य में भी निरखें तो सम्बंध पाया जा रहा अन्यथा कुछ बात बन ही न सकेगी। यहाँ चेतन में चेतन जैसी ही पर्याय होवे, पुद्गल जैसी पर्याय न हो इसका नियामक कौन ? द्रव्य प्रत्यासत्ति। देखो यों पर्याय अहेतुक नहीं, पर्याय सम्बंधहीन नहीं, एकान्त न करना, अन्यथा कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। इस पर्याय का द्रव्य से सम्बंध है यह द्रव्य प्रत्यासत्ति है। पर्याय का क्षेत्र से सम्बंध है। स्वक्षेत्र प्रदेश से यह क्षेत्र प्रत्यासत्ति है। पर्याय का काल से सम्बन्ध है। जिस काल को सम्यग्दर्शन है उस काल में सम्यग्ज्ञान है, बराबर सम्बन्ध बन रहा है काल का। भाव प्रत्यासत्ति भी है, जैसे ही भाव से सम्यग्दर्शन है वैसे ही भाव से सम्यग्ज्ञान है और अनन्त दर्शन होते हैं, अरहन्त और सिद्ध भगवान का भाव प्रत्यासत्ति है। अरहन्त को मुक्त क्यों कह दिया ? मुक्त तो सिद्ध हैं। अरहन्त भगवान तो शरीर में हैं। घातिया कर्म से ही रहित हैं, अघातिया कर्म से सहित हैं। योग है अभी। ऐसे अरहन्त हैं, फिर भी सिद्धों में जैसा अनन्त आनन्द वैसा अरहन्त में। तो प्रत्यासत्ति बिना समानभाव नहीं माना जा सकता। यों सम्बन्ध को सिद्ध करने का आधार है प्रत्यासत्ति। सर्वथा एकान्त नहीं है कि कुछ सम्बन्ध नहीं। क्षण-क्षण में होने वाली पर्याय तो बौद्धों के द्वारा माना गया द्रव्य है उसका कुछ सम्बन्ध नहीं पूर्व पर्याय से या द्रव्य से, ऐसा एकान्त करने में वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती है। हाँ ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में ऐसा बताया है उसे समझें, पर ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में है यह समझें, ऐसा नहीं कि सर्वथा ऐसा है ?

निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु सोऽर्थकृत्।

तो सम्बन्ध है तब स्वामित्व बनता है और स्वामित्व अनुयोग के द्वारा वस्तु का परिचय कराया जाता है। अब जरा स्वामित्व को सिद्ध करने का आधार है सम्बन्ध और सम्बन्ध को सिद्ध करने आधार है प्रत्यासत्ति। तो देखते जाइये। मैंने जो कल अनुभव किया या देखा उसे आज जान रहा हूँ, स्मरण कर रहा हूँ इसका कारण क्या है ? द्रव्यप्रत्यासत्ति जो हमने अनुभव किया था वह इस द्रव्य ही में था, आज जो हम स्मरण कर रहे हैं वह इस द्रव्य में तो है ऐसा द्रव्य-प्रत्यासत्ति होने से यह स्मरण पर्याय ये सब सिद्ध हो रही हैं, धारा टूट जायेगी, अगर द्रव्यासत्ति न रहेगी। अट्ट सट्ट पर्याय क्यों नहीं हो जाती ? अगर पर्याय अहेतुक हैं तो अनियत जहाँ चाहे कुछ क्यों नहीं हो जाता ? तो उसका सम्बन्ध है द्रव्य प्रत्यासत्ति से। तो द्रव्य हेतु है और द्रव्य पर्याय रहित कहीं होती नहीं तो पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य यह हेतु है, उपादान है और इस प्रत्यासन्ति के कारण सब परिणमन चलते हैं।

स्वामित्व अनुयोग से तत्त्वों के परिचय के कथन की उपयुक्तता—जहाँ स्वातन्त्र्य की बात देखी निश्चय से तो व्यवहार से बाह्य में स्वामित्व का भी ज्ञान होता है। देखो परिचय पाने के लिये अंतरंग और बहिरंग सभी प्रकार का परिचय आवश्यक होता है द्रव्यादि प्रत्यासत्ति से। निरंशवादी यहाँ यह कह सकते हैं कि भाई समय-समय में द्रव्य स्वतन्त्र होते हैं, पर उनमें सन्तान है, उस सन्तान के कारण व्यवस्था बनती है इस ही संतान में पहले जो अनुभव किया गया था उस ही संतति में आया हुआ आज का ज्ञान स्मरण करता है। तो भाई कह लो संतान, पर संतान वास्तविक है या अवास्तविक है ? अगर वास्तविक है तो उसी को द्रव्य कहते हैं। बौद्धों ने उसे संतान कह दिया। और अगर अवास्तविक है तो अंतरंग से कोई कार्य की सिद्धि नहीं होती। अवास्तविकता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या अट्ट सट्ट है ? उससे कोई अर्थ क्रिया नहीं होती ? जैसे चित्र बना देवें, एक शेर का चित्र बना दिया और ऊपर एक हिरण बैठा दिया तो वह ही तो है। कहीं इस कल्पना के कारण वह सिंह हिरण को तो न खा लेगा। वह तो कल्पना है। तो इसी तरह केवल कल्पना मात्र हो तो उसका वास्तविक अर्थ तो न बन जाएगा। तो संतान मानने पर भी वस्तुत्व देना होगा उसे, उसी का नाम द्रव्य है। तो पर्यायों का द्रव्य प्रत्यासत्ति है। द्रव्य उपादान है और पूर्व पर्याय सहित द्रव्य उपादान है तो स्वामित्व बढ़ गया। यह पर्याय किसकी ? यह जीव की। औपशमिक भाव किस का ? जीव का। जीव इस भाव का स्वामी है यही तो स्वामित्व अनुयोग के द्वारा परिचय कराया जाता है। तो द्रव्य प्रत्यासत्ति होने से स्वामित्व है। अब बाहर भी द्रव्य प्रत्यासत्ति होती है ; बाहरी बात तो उसमें से देखिये —भीतरी बात तो अन्तरनय से देखिये परिचय तो सभी प्रकार होता है। द्रव्य प्रत्यासत्ति। शरीर जहाँ है वहीं बद्ध है और स्थावर त्रस नाना पर्याय बतायी जाती हैं, नाना प्रकार से जीव कहा जाता है तो यह सब द्रव्य प्रत्यासत्ति है। भिन्न-भिन्न द्रव्यों में निकटता है। मना तो नहीं किया जा सकता। कोई कहे कि व्यवहार असत्य है, तो इसके मायने यह नहीं कि आत्मा यहाँ आ जाय शरीर वहीं धरा रहे ऐसा अभी करके बता दो जरा ! अरे मुख से ही तो बोला कि शरीर और आत्मा का सम्बन्ध व्यवहार से है। अगर व्यवहार असत्य कहा जाय तो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अभी जान बूझकर आत्मा और शरीर पहुँच जाने चाहिये। असत्य से तो काम नहीं बनता। तो व्यवहार की दृष्टि में व्यवहार की बात है। व्यवहार की दृष्टि में निश्चय की बात लगायी जाय तो परिचय नहीं बनता। निश्चय के उपाय में व्यवहार की बात लगाया तो परिचय नहीं बनता। समझना होगा दोनों को और दोनों को समझकर किसी नय को मुख्य बना लें और उसमें जो शिक्षा मिलती हो उसे प्राप्त कर लें, स्वामित्व है, प्रत्यासत्ति है।

स्याद्वाद् में विरोधपरिहार सामर्थ्य स्याद्वाद में अनेक नय हैं, यह नयचक्र है। कोई पक्ष असिद्ध नहीं, सबकी सिद्धि बनती है नयों के द्वारा। अध्यात्मसहस्री में एक परिच्छेद है। उसमें यह सिद्ध किया गया कि जो दार्शनिक है, जो भी वह बोलता है वस्तु स्वरूप के बारे में वह सब सही है, उनकी दृष्टि लगा लें उसमें से सही है, सर्वथा सही नहीं है। जैसे इससे बढ़कर और गड़बड़ क्या बात रखी जा सकती कि सारे जगत को ईश्वर ने बनाया है। एक दार्शनिक यों मानते हैं मगर जैन सिद्धान्त के नयों से मिलान करें तो यह भी सही है, कैसे जगत में जितने दृश्यमान पदार्थ हैं मनुष्य, पशु, पक्षी पेड़ पौधे आदिक इन सबकी रचना कैसे हुई, यह सृष्टि कैसे हुई ? जीव का सम्बंध है तब सृष्टि हुई ना ! हाँ यह तो मान लिया, और जो अचेतन पदार्थ है कंकड़ पत्थर आदिक इनकी मुद्रा कैसे बनती ? ये सजीव थे ना, वृक्ष में थे खान में थे, जीव का सम्बंध था तब तक इनका ढाँचा बनता था। अब जीव हट गया, अजीव-अजीव रह गए। तो जो ये दिखने वाले पदार्थ हैं उनकी सृष्टि का कारण भी जब जीव है तो जगत में जो कुछ भी दिखता है उस सबका सृष्टिकर्ता जीव है। अब हैं वे अपने-अपने जीव। जो जीव आया जिस जगह से वहाँ की सृष्टि का कारण वह जीव है। जीव में खुद जो भाव बनता है उनका कारण यह जीव है। एक नय से यह बात देखो, अब दूसरे नय से चलो। जीव-जीव देखें तो भाव प्रत्यासत्तिसे सब जीव एक हैं। भाव प्रत्यासत्ति के मायने सब जीवों में जीवत्व है, यह जीवों का स्वरूप एक है। तो जैसे कोई व्यक्ति गेहूँ खरीदने गया, गेहूँ का ढेर देखा तो वह पूछता है कि यह गेहूँ किस भाव का है ? यों एक वचन से ही तो पूछता है। क्या वह ऐसा पूछता कि ये गेहूँएं किस भाव के हैं ? ऐसा कोई बहुवचन में पूछता है क्या ? तो उन सब गेहूँवों में गेहूँपन की दृष्टि में

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकपन है तो समस्त जीवों में जीवत्व की दृष्टि से एकपना है इसलिए जीव एक है। इतना तो पहले मान लिया था कि सारी सृष्टि का कारण जीव है। और अब यह मान लिया गया कि समस्त जीव क्या हैं? एक हैं? स्वरूप दृष्टि से देखें तो अब कह लीजिये कि वे जीव हैं ईश्वर, समस्त जीव हैं ईश्वर। सबमें परमैश्वर्य है। स्वभाव है। इसलिये कहा गया कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता है। नयों के द्वारा हिसाब लगा लें। अब कोई ऐसा मान ले कि कोई ईश्वर अलग से है वह सृष्टि करता है तो यह बात गलत है। कौन सा ऐसा दर्शन है जो नय से सही बैठता है? अत्यन्त भिन्न-भिन्न दर्शन वेदान्त, बौद्ध, मीमांसक, योग, प्रभाकर, भट्ट आदिक सभी के विवाद स्याद्वाद विधि से मेटे जा सकते हैं तो एक ही जैन सम्प्रदाय के अन्दर अगर कोई भिन्न-भिन्न धारणायें बन गईं तो वह अविरूद्ध नहीं हो सकता? नयबल से सब बातें सही बन सकती हैं किसी में कोई विरोध की बात नहीं है।

आत्म कल्याण की प्रधानता से ही मानव जीवन की सफलता—भैया! मनुष्य जीवन पाया है तो आत्म-कल्याण की प्रधानता रखना चाहिये। मेरा हित हो। न कि चर्चा की प्रधानता दें। सब कुछ हित के लिए, चर्चा करना हित के लिए, पूजा, स्वाध्याय करना हित के लिए, सत्संग बनाना हित के लिये। विवेकी पुरुषों के समस्त कार्यों का समागमों का सम्बन्ध का प्रयोजन है हित पाना। अगर वास्तव में संसार के दु:खों से छूटने का भाव जगा है तो उसको कहीं विवाद नहीं होता, और विवाद में सच बात भी हो तो भी असत्य हो जाती है, क्योंकि वह हित करने में समर्थ नहीं है। राग द्वेष विषय कषाय बढ़ाने का हेतुभूत है। आत्मानुशासन में बताया है कि मेरा किस में हित है? ऐसी भावना जो रखता है उसे कहते हैं श्रोता। अब श्रोता तो सभी हैं। बोलने वाला भी श्रोता है, उसके भी तो कान हैं। वह भी तो बोलता जाता और सुनता भी जाता। वह खुद वक्ता है खुद सोता है। तो खुद बोलकर भी खुद को सुनाये इस सुनने से लाभ तब होगा जब मूल में यह निर्णय मिले कि मुझे तो आत्महित करना है। न चर्चा न पार्टी न पक्ष। हाँ तत्त्व की बात और है मगर उसके नाते से उसकी बात यह हुई, अगर ऐसी बात है तो वहाँ आत्महित की बात गौण हो जाती। तो श्रोता का मुख्य लक्षण है मेरा किस बात में हित है। सर्वप्रथम उस भव्य में यह बात होनी चाहिए कि मेरा हित हो। यह भाव हो तो एक छोटा बालक कुछ कहता हो तो उसकी बात सुनकर ही हम बहुत ऊँची चीज ग्रहण कर लेंगे। और हित की भावना नहीं है तो कितने ही बड़े-बड़े व्याख्यान भाषण हो रहे हों, पर इसके चित्त में कुछ असर नहीं पड़ सकता। जिसे हित की अभिलाषा है उसे कहीं विरोध नहीं दिखता।

प्रत्यासत्तियों की स्पष्टता—स्वामित्व अनुयोग के बारे में अभी एक चर्चा थी कि किसी का किसी से सम्बन्ध नहीं। फिर स्वामित्व की बात कहना बेकार है। उसके विषय में ऊहापोह पूर्वक निर्णय किया गया, इससे सिद्ध हुआ कि स्वामित्व सम्बन्ध है और एक का दूसरे से व्यावहारिक सम्बन्ध है और एक का एक में रहने वाले अनेक का उस एक से सम्बन्ध है। इस प्रकार द्रव्य प्रत्यासत्ति से एक द्रव्य में भी प्रत्यासत्ति जानी गयी। अब सुनिये क्षेत्र प्रत्यासत्ति। यहाँ आप सब लोग बैठे हैं, बतलाओ क्षेत्र प्रत्यासत्ति है कि नहीं। वक्ता बैठा, श्रोता बैठे, और भी अनेक लोग बैठे, तो इनमें परस्पर सम्बन्ध है कि नहीं? क्षेत्र से कह सकते हैं। अगर व्यवहार में भी क्षेत्र प्रत्यासत्ति न मानी जाये तो बात नहीं बनती। क्या वजह है कि बगले तालाब के एक किनारे एक लाइन में बैठ जाते हैं और तरह से क्यों नहीं बैठ जाते? क्योंकि सम्बन्ध है, यह क्षेत्र प्रत्यासत्ति है। एक द्रव्य में भी सम्बन्ध, अनेक द्रव्य में भी सम्बन्ध। भिन्न-भिन्न द्रव्यों में व्यवहार से सम्बन्ध, एक द्रव्य में आन्तरिक सम्बन्ध है वह सानिध्य की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात है। काल प्रत्यासत्ति—समय से सम्बन्ध। पूर्व पर्याय के बाद उत्तर पर्याय हुयी, यह काल प्रत्यासत्ति है। जिस काल में सम्यग्दर्शन है उस काल में सम्यग्ज्ञान है। दो पर्याय हुई। काल प्रत्यासत्ति है और भिन्न-भिन्न पदार्थों में भी काल प्रत्यासत्ति है। जिस काल में निमित्त का समय है उस काल में उपादान अपनी योग्यता से अपना परिणमन करता है। दो में भी सम्बन्ध, एक में भी सम्बन्ध, यह मिथ्या बात नहीं है भाव प्रत्यासत्ति का सम्बन्ध स्पष्ट है। अब जहाँ सम्बन्ध है वहाँ स्वामित्व अनुयोग से परिचय कराने की बात चलती है। भाव प्रत्यासत्ति का भी सम्बन्ध है। देखिये जब कोई प्रसंग आता है सकल संयम, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान इनमें भाव प्रत्यासत्ति है। तो जब ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के प्रत्यासन्न हैं तो सम्बन्ध है और जहाँ सम्बन्ध है वहाँ स्वामित्व की बात भी आती है। अब उसमें कितना वर्णन है, कितनी बात है, उसका कोई पार नहीं पा सकता। निर्देश स्वामित्व ये परिचयोपाय अनुयोग वास्तविक हैं, और कोई इनको नहीं भी नहीं मानने वाले हैं इसलिये सूत्र में रखे गये हैं। जो नहीं मानने वाले हैं उनको समझने के लिये भी रखना पड़ता है और जो वास्तविकता है उसके देखने के लिये भी रखना पड़ता। तो ऐसे इन ६ अनुयोगों से वस्तु का परिचय कराया जाता है, उसमें यह कुछ थोड़ा स्वामित्व के सम्बन्ध में बात कही गई कि यह वास्तविक परिचय कराने का ढंग है। जैसे जीव का निश्चय से स्वामित्व है, अपने भाव पर, व्यवहार से स्वामित्व है द्रव्य पर्याय पर, शरीर पर, कर्म पर। इसका है यह कर्म। कहते हैं ना कि इस जीव का यह पाप है, यह पुण्य है, यह कर्म है। हैं भिन्न-भिन्न द्रव्य। सम्बन्ध तो निश्चय से नहीं है। लेकिन एक जीव मरा और उसके साथ कर्म गये। अनेक द्रव्य होने पर भी अगर कोई सम्बन्ध नहीं, तो कर्म तो यहीं रह जाने चाहिये थे। जीव हंसा बन गया तो उड़ जाने दो। लेकिन साथ कर्म भी जाता, विस्रसोपचय भी जाता। तो अनेक द्रव्यों में भी सम्बन्ध है तो व्यवहारतः। व्यवहार यों कहलाता है कि अत्यन्ताभाव वाले पदार्थ में कही गई बात है। एक द्रव्य में भी सम्बन्ध है।

अपने में स्वामित्व अनुयोग से परीक्षा करने का प्रयोग—अब अपने आपको देखना चाहिये निश्चय दृष्टि से कि मैं किसका स्वामी हूँ। जिसका मैं स्वामी होऊँ। उस पर अपना अधिकार जमाऊँ तो अच्छा है, और जिसका मैं स्वामी नहीं, उस पर अधिकार जमाऊँ तो वहाँ तो डंडे बरसेंगे। पार नहीं पा सकते। देखो जीवन में अनेक प्रसंग ऐसे आते हैं कि जिस पर आपको विश्वास है—यह मेरा ही तो मित्र है, मेरा ही तो पुत्र है, मेरा ही तो सब कुछ है। ओर कोई आपस में खटपट नहीं—फिर भी योग ऐसे होते कि आपके काम नहीं आते। भले ही आप कुछ थोड़ा बतलावेंगे, करेंगे, काम आयेगा, मगर एक आसानी से सहसा ऐसा योग होता कि काम नहीं आता। उल्टे काम आते, उल्टी बात होती। तो क्या है? अधिकार थोड़े ही है किसी बात में। बाहर में परमाणुमात्र पर भी मेरा अधिकार नहीं, न किसी जीव पर मेरा अधिकार। तब ही तो ये क्रान्तियाँ हो उठती हैं। भारत देश पर अंग्रेजी गवर्नमेन्ट ने राज्य किया, पर ये भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं, भिन्न-भिन्न जीव हैं। न सह सके तो क्रान्ति मच गई. अंग्रेजों को भारत देश छोड़ना पड़ा। कोई किसी के बहुत ही आधीन है, नौकर है, बहुत विवश है, मगर निरन्तरभ्यदि उस पर कोई अधिकार जमाये, उसे डाटे, मारे, उस पर अन्याय करे तो विवाद खड़ा हो जायेगा। किसी का किसी पर कोई स्वामित्व नहीं है, सबका अपने-अपने भावों पर स्वामित्व है। सो ऐसे जो परभाव हैं, औपाधिक हैं, नैमित्तिक हैं उनका मैं स्वामी नहीं। क्यों मैं सोचूँ कि यह जाये, ऐसा हो जाये, ऐसा क्यों न हुआ? अरे योग मिलेगा तो हो जायेगा। तो मैं वास्तव में स्वामी हूँ केवल अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहज स्वभाव का। इसके अतिरिक्त मैं किसी दूसरे भाव का स्वामी नहीं हूँ। न विषयों का, न कषायों का, न परिणामों का, किसी का भी मैं स्वामी हूँ। मैं तो अपने सहज स्वभाव का स्वामी हूँ, उस ही चैतन्य स्वभाव को, इस ज्ञान स्वभाव को दृष्टि में लें, दूसरा न मिलेगा। आप में ही ऐसी योग्यता है, अज्ञान है या विषय रुचि है या भीतर क्षोभ है, न कि दूसरा कोई पदार्थ आपको सहज स्वभाव के लक्ष्य से विचलित करेगा। मैं स्वामी हूँ अपने सहज स्वभाव का। उस चैतन्य स्वभाव को, ज्ञानस्वभाव को आप दृष्टि में लें उससे चिगाने दूसरा कोई न जायेगा, आप में ही ऐसी विषयरुचि है जिससे आप अपने आत्मस्वभाव से हटते हैं। कोई दूसरा पदार्थ आपको सहज स्वभाव के लक्ष्य से डिगाने के लिये नहीं है। मेरा एक सहज चैतन्य स्वभाव, अनादि अनन्त अहेतुक स्वतः सिद्ध एक यह चिद् भाव है जिसे शुद्ध आत्मा कहते हैं। उसका लक्ष्य बने सो बुद्धिमान है। इसके मायनेयह है कि जिसके तुम वास्तव में स्वामी हो उससे तुमने सम्बन्ध बनाया है, यह तो सफल हो जायेगा, मगर जिसका मैं स्वामी नहीं उसका स्वामी बन जाऊँ तो यहाँ गया, वहाँ गया, मरा, जन्मा, व्याकुलता हुई, रागद्वेष हुये, बस इसी तरह से घूम-घूमकर मैं अपने को बरबाद करूँगा। तो जिसका मैं वास्तव में स्वामी हूँ उसको निरन्तर दृष्टि में लें तो कल्याण हो जायेगा, और जिस पर मेरा अधिकार नहीं उस पर अधिकार जमायें, उसके स्वामी बनें तो उसका फल संसार में भटकना है।

स्वामित्व अनुयोग में अपने कारण कलाप से हुये भावों के स्वामित्व का विचार– निर्देश आदि अनुयोगों से किसका अधिगम होता है? सभी का निसर्गज सम्यक्त्व का, अधिगमज्ञ सम्यक्त्व का, मोक्ष मार्ग का, रत्नत्रय का, जीवदि ७ तत्त्वों का। जहाँ जो विशेषतायें हैं वे उनके साथ हैं। देखो जितने भी चारित्र हैं वे श्रुत पूर्वक हाते हैं। इसी कारण चारित्र के भेद सब अधिगमज होंगे, तो उनमें निसर्ग-पन है नहीं, देखो सम्यक्चारित्र तक हेतुओं से उत्पन्न होता है। न तो हम कह सकते कि सम्यक्चारित्र निसर्ग व अधिगम से होता और न सम्यग्ज्ञान को कह सकते, किन्तु सम्यक्त्व ही एक ऐसा इन तीनों में है कि जो निसर्ग से भी हो सकता है और अधिगम से भी हो सकता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीनों पर विचार करना चाहिये कि वे किस तरह से उत्पन्न कर लेते हैं। सम्यग्दर्शन किसी को निसर्ग से होता है किसी को अधिगम से। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने में यद्यपि निमित्त कारण एक ही प्रकार से सबमें है। दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ और अनन्तानुबंधी क्रोध मान, माया, लोभ इन ७ प्रकृतियों के उपशमसे औपशमिक, क्षय से क्षायिक, क्षयोपशम से क्षयोपशमिक लो हुआ न निमित्त कारण ७ प्रकृतियों का उपशम क्षय क्षयोपशम है, व्यवहार में जो सम्यक्त्व देखा जाता है, बताओ तो किस किस कारण को लेकर होता है? सम्यग्दर्शन अहेतुक तो है नहीं कि वह किसी हेतु से हुआ नहीं है, जो चीज नहीं है और किसी समय हो, उसका नियम से कोई कारण होता है। अहेतुक नहीं। जो होता है वह अनादि से होता है। सम्यग्दर्शन अनादि से नहीं है, भले ही अनन्त काल तक रहे, मगर उत्पत्ति की बात कही जा रही है कि वह अहेतुक होता है किसी दिन से होता है ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन अहेतुक नहीं है। जगत के ये मोही जीव ऐसे घोर कष्ट पा रहे हैं, वेदना सह रहे हैं तो यह वेदना यह अज्ञान है, मिथ्यात्व ही तो है। सम्यक्त्व कहाँ है? इस जीव में अनादि काल से मिथ्यात्व बस रहा है, अब सम्यक्त्व हुआ तो सोचना चाहिये कि कुछ कारण जरूर है। तो निमित्त कारण ७ प्रकृतियों का अभाव है और कारण में किसी को तो परोपदेश से होता है, किसी को निसर्ग से। परोपदेश से कुछ घटना पाकर जाति स्मरण आदिक कारण पाकर होता है। देखिये यहाँ दो बातें कही जा रही हैं? एक ओर तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परोपदेश और दूसरी ओर परोपदेश को छोड़कर बाकी सब बाह्य कारण। परोपदेश एक ऐसा अद्भुत कारण है कि सबके मुकाबले में यह अकेला रखा जाता है और इस परोपदेशकी इतनी अद्भुत महिमा गायी जाती है। देशनालब्धि के बिना किसी को सम्यक्त्व नहीं होता। देशनालब्धि अवश्य होती है, चाहे पूर्वभव में हो चाहे इस भव में हो। इस देशनालब्धि की बात यहाँ नहीं कही जा रही। इस जीव को किसी को परोपदेश से सम्यक्त्व होता है तो किसी को परोपदेश बिना जाति स्मरण आदिक अन्य घटनाओं को पाकर सम्यग्दर्शन होता है यों सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम दोनों से उत्पन्न होता है। उसका स्वामी कौन है यह बात इसमें कही जा रही है।

निर्देशादिकी ज्ञानरूपता होने से प्रकृत सूत्र का पूर्व सूत्र से अविरोध – ७ वां सूत्र यह चल रहा है – इसमें निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन ६ अनुयोगों का इसमें वर्णन है। अब जरा दार्शनिक विधि से परखें – ये ६ अनुयोग क्यों रखे गये? और प्रत्येक अनुयोग का कितना महत्त्व है? पहले इस सूत्र की उपयोगिता पर हो विचार करें तो प्रारम्भ में यह शंका हो सकती है कि इससे पहले सूत्र में कहा है कि प्रमाण और नयों से अधिगम होता है। वास्तविक बात है कि ज्ञान के द्वारा हो तो जानना बनेगा। अचेतन के द्वारा जानना तो न बनेगा, फिर ये निर्देश स्वामित्व आदिक जो ज्ञान नहीं माने, जैसे निर्देश, स्वामित्व ये कोई ज्ञान की बात हैं क्या? तो फिर इनके द्वारा अधिगम कैसे हो जायेगा? यह आशंका होती है। उसके समाधान में यह समझना कि ये छहों अनुयोग ज्ञानरूप हैं और ये ज्ञान के ही विशेष हैं। ज्ञान किसी को अनिष्ट नहीं होता। ये ज्ञान के ही विशेष हैं · निर्देश विषयक ज्ञान, स्वामित्व विषयक ज्ञान। ज्ञान का और विषय में अभेद उपचार है। यह कोई ज्ञान से अभिन्न बात नहीं है। यह भी प्रमाण और नयरूप हैं जब निर्देश आदिक के द्वारा समग्र ज्ञान हो। समग्र निर्देश, समग्र स्वामित्व समझ में आये तब तो हुआ प्रमाण और जब केवल एक देश से अधिगम हो तब हुआ नय। जो ये ६ अनुयोग प्रमाणात्मक हैं और नयात्मक हैं। ऐसे ६ अनुयोगों के द्वारा वस्तु तत्त्व का ज्ञान होता है। अब यहाँ यह पूछा जा सकता कि निर्देश आदिक ज्ञान के भेद हैं तो कौन से ज्ञान के भेद हैं? ज्ञान तो ५ प्रकार के माने गये। मति ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। तो संक्षेप में उत्तर यह है कि ये श्रुतज्ञान के भेद हैं।

निर्देशादि अनुयोगों की श्रुतज्ञानरूपता की चर्चा—कोई शंका करे कि ये तो दोनों के भेद होने चाहिए—मतिज्ञान के और श्रुत ज्ञान के। केवल श्रुतज्ञान के भेद क्यों कहे जा रहे? तो विचार करेंगे तो ये मतिज्ञान के भेद नहीं प्रसिद्ध होते। ये छहों अनुयोग श्रुतज्ञान के ही विशेष हैं, क्योंकि जो लोग मतिज्ञान के विशेष मानते वे यह बतलावें कि ये मतिज्ञान के विशेष क्यों हुए? यदि कहें कि मति और श्रुत के हैं ये विशेष इसलिए श्रुत, मति के भी विशेष कहलायेंगे। मति ज्ञान पूर्वक श्रुत ज्ञान होता हैं, अर्थात् किसी पदार्थ को हम जानते हैं तो प्रथम तो दर्शन हुआ, फिर सामान्य बोध हुआ, फिर उसके बाद में विषयान्तर में बोध चलने लगता है। तो जो विषयान्तर का बोध है वह है श्रुतज्ञान और जो प्रकृत विषय का सामान्य बोध है वह है मतिज्ञान। और, उससे पहले जो उसे जानने के लिए आत्मा से छूटे हुए बल को प्रकट किया है वह है दर्शन। किसी भी नवीन ज्ञान को जानने के लिए आत्मा की ओर झुककर एक बल प्रकट किया जाता है, फिर जाना जाता है। जैसे एक ऊँची कूद (जम्पिग) का खेल होता है, दो बाँसों में कुछ ऊँचाई पर एक रस्सी बाँध दी जाती है उस पर लड़के लोग छलांग मारते हैं। तो जो लड़का जमीन में अपने पैरों का ज्यादह बोझ (दबाव) देकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कूदता है उसकी कूद ऊँची होती है, उसके पैर के निशान भी जमीन पर बन जाते हैं, और जो जमीन में अधिक बल (दवाब) नहीं देते उनकी कूद ऊँची नहीं हो पाती है। तो जैसे ऊँची कूद का बल पाने के लिए नीचे पहले बल लगाया जाता है इसी तरह बाहरी ज्ञान को जानने के लिए पहले भीतर का बल लगाया जाता है वह है एक सामान्य प्रतिभास जो कि आत्मप्रतिभास रूप पड़ता है उसे दर्शन कहते हैं। जो दर्शन का दर्शन कर लेता है वह सम्यग्दर्शन को पा लेता है। दर्शन तो सब करते हैं, पर दर्शन का दर्शन सबको नहीं होता। जो ज्ञान दर्शन दो गुण हैं उनमें दर्शन गुण ने क्या विषय किया ? दो बाह्य वस्तु में भेद तो किया नहीं, भेद करे तो वह ज्ञान कहलाने लगे। तो बाह्य वस्तुओं में भेद न करके सामान्य रूप से ज्ञान होने का नाम दर्शन है, तो वह सामान्य रूप का आधार कहाँ रहा प्रतिभास ? बाह्य वस्तु आधार हो तो भेद ज्ञात हो, भले ही दर्शन का आधार सामान्य में बाह्य वस्तु भी है, लेकिन इस पद्धति में है जिस पद्धति में आत्मप्रतिभास हो, पर मिथ्यादृष्टि जीव इस आत्मप्रतिभास का का मर्म नहीं जान पाते। होता है ना ऐसा कि किसी बात का उपयोग तो करें, किन्तु उस बात का परिचय न पावें। तो इस दर्शन गुण का उपयोग तो सभी ले रहे हैं, पर इस दर्शन की कला का बोध नहीं होता सबको। तो दर्शन में आत्मप्रतिभास हुआ। वह सामान्य रूप से बाह्य वस्तु का ज्ञान हुआ फिर उसके विषय में विशेष बोध हुआ, तो श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। श्रुत ज्ञान के जितने भेद हैं वे सब मतिज्ञान के भी भेद कहलायेंगे, ऐसा एक शंकाकार कह रहा है, यह बात उनकी ठीक लगती नहीं है, क्योंकि इस तरह तो श्रुतज्ञान अवधिज्ञान पूर्वक भी होता है, मनः पर्यय ज्ञानपूर्वक भी होता तब इस अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान के भी भेद निर्देशादिक मान लेना चाहिये। किसी मुनि महाराज से कोई पूछे कि महाराज, मैं पूर्वभव में क्या था ? अथवा कोई घटना पूछे, तो मुनि महाराज बताने से पहले क्या करते हैं ? इन्द्रिय व्यापार बन्द करके ज्ञान से उस बात को प्रत्यक्ष निरखते हैं और उसके बाद फिर श्रुत ज्ञान द्वारा बताते हैं। तो श्रुत ज्ञान से जो कुछ बताया वह अवधिपूर्वक हुआ ना ? तो यों इन निर्देश आदिक अनुयोगों से अवधिज्ञान का भी भेद कह दें, मनः पर्यय का भी भेद कह दें, क्योंकि मनः पर्यय ज्ञानी भी मनः पर्यय से वह जानता है, बता नहीं सका है। बताने काम तो श्रुतज्ञान ही करेगा, वह नहीं। तो उपचार से मति आता है तो मति के भेद मान लिए जायें इस अनुयोगों को तो फिर अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान के भेद भी बन जायेंगे।

श्रुतज्ञान की साक्षात् मतिज्ञान पूर्वकता व परम्परा या अन्य ज्ञानपूर्वकता – अब यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि निर्देशादि, मति, अवधि व मनःपर्यय के भेद बने चाहे न बने, यह बात अलग रखो, पर इससे यह तो सिद्ध हो गया कि श्रुत ज्ञान अवधिज्ञान पूर्वक भी होता है, मनःपर्ययज्ञान पूर्वक भी होता है, फिर सूत्र में तो बताया केवल मतिपूर्वक। अब तो यह अवधिपूर्वक भी बन गया। तो बात यह है कि एक होता है अव्यवहित कारण और एक होता है व्यवहित कारण याने साक्षात् कारण और परम्परा कारण। तो श्रुतज्ञान तो साक्षात् मतिपूर्वक ही है और परम्परा से अवधिपूर्वक भी है, और मनःपर्यय ज्ञानपूर्वक भी है। लेकिन श्रुत होता है दो प्रकार का। (१) शब्दात्मक और (२) ज्ञानात्मक। तो शब्दात्मक श्रुत जितना है वह अवधि ज्ञानपूर्वक भी हो सकता और, मनःपर्यय ज्ञान पूर्वक भी हो सकता, शब्दात्मक पद्धति से। और की तो बात क्या ? केवल ज्ञानपूर्वक भी होता है, जो प्रभु की दिव्यध्वनि खिरती है, दिव्यध्वनि होती है वह बात रचना केवल ज्ञानपूर्वक नहीं होती तो तो प्रमाण नहीं माना जाता। वह द्वादशाङ्ग वाणी को क्यों प्रमाणभूत है ? तो बताते हैं ना, कि केवल-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानी के द्वारा दिव्यध्वनि में कहा गया है। तो भले ही पर्याय दृष्टि से दोनों स्वतन्त्र स्वतन्त्र काम हैं। केवल ज्ञान होना ज्ञान का परिणमन है। दिव्य ध्वनि होना भाषा वर्गणा का परिणमन है भले ही स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, किन्तु केवलज्ञान के सानिध्य का कुछ भी सहयोग न माना जाय उस दिव्यध्वनि में तो फिर यह इलम बताओ कि दिव्यध्वनि केवली के ही क्यों होती ? किसी पागल पुरुष के अथवा किसी बच्चे के दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरती ? अथवा, कभी पागल पुरुष भी तो दिव्यध्वनि जैसी करता है और छोटे-छोटे बच्चे भी तो दिव्यध्वनि जैसी करते हैं, वे कुछ अटपट भाषा बोलते हैं, पर उनके संकेत को कौन समझे ? तो क्या उन बच्चों की अथवा उन पागल पुरुषों की वह दिव्यध्वनि प्रमाणभूत है ? अरे केवल ज्ञान की ही दिव्यध्वनि प्रमाणभूत है। इसमें कुछ कहना तो पड़ेगा। तो श्रुत ज्ञान-पूर्वक हैं ये शब्द इसलिए प्रमाणभूत माने गए हैं। खैर प्रमाण में यह बताया जा रहा कि निर्देश आदिक छहों अनुयोग श्रुतज्ञानरूप हैं, इस कारण इनके द्वारा जाना जाता है।

शब्दात्मक निर्देशादिकों की भी श्रुतज्ञान रूपता – अब एक बात और सुनो। कोई लोग कहते हैं कि श्रुत को तो केवल ज्ञान रूप बताया। शब्दात्मक श्रुत को क्यों श्रुतज्ञान नहीं कहा गया। प्रमाण नहीं कहा गया, श्रुत भी नहीं कहा गया। वह तो बात मात्र है, क्या ? यदि श्रुतज्ञान प्रमाणरूप ही है ऐसा कोई एकान्त करे तो वह कुछ बोल भी न सकेगा—और न सिद्धान्त सिद्ध कर सकेंगे, क्योंकि अब श्रुत तो केवल प्रमाण रूप रहा, शब्द रूप नहीं है। और जितनी भी सिद्धि की जाती है वह सब शब्द द्वारा की जाती है। और शब्द को श्रुत माना नहीं तो अब शब्द साधन न रहे क्योंकि शब्द को जब श्रुत रूप न माना तो शब्द साधन न कहलायेंगे ज्ञान के। और जो साधन नहीं उसे कहते हैं असाधन और असाधन के कथन करने को निग्रह स्थान कहते हैं। जैसे परस्पर में चर्चा चल रही हो और कोई ऐसी बात कहे, जो अटपट है, प्रकृत बात को सिद्ध करने वाली नहीं है तो उसका निग्रह किया जाता है न ? उसको शर्मिदा किया जाता, क्योंकि उसने अयोग्य वचन बोला। और, अब इस दार्शनिक के लिये जो श्रुत को प्रमाणरूप ही कहता है, सारे वचन अटपट हो गये तो असाधन किया हुआ ही तो वचन कहा, वह पराजय का स्थान माना गया है, फिर न प्रश्न किया जा सकता और न उत्तर दिया जा सकता। न गुरु बोल सकेगा, न शिष्य सुन सकेगा। जब कि सारे शब्द श्रुत नहीं हैं, ऐसा मान लिया गया है। तो श्रुत दो प्रकार के होते हैं—(१) ज्ञानरूप और, (२) शब्द रूप। शब्द रूप श्रुत को आगम कहते हैं और आगम का भी हम कितना विनय करते हैं। तो शब्द श्रुत और ज्ञानश्रुत दोनों प्रकार के श्रुतों से हम कुछ निर्णय बना सकेंगे। खाली ज्ञान —ज्ञानरूप मानकर निर्णय न होगा और खाली शब्द शब्दरूप मानकर निर्णय न होगा, किन्तु ज्ञान का और शब्द का सम्बन्ध जोड़ना होगा, उससे ज्ञान की प्रवृत्ति होती है तो सूत्र में जो ६ अनुयोग कहे गये हैं वे शब्द रूप श्रुत हैं और प्रमाण रूप श्रुत हैं। उनके द्वारा इन समस्त तत्त्वों का परिचय किया जाता है। कोई शंकाकार यह भी कह सकता कि हम शब्द रूप श्रुत न मानेंगे तो भी काम चलालेंगे। कैसे कि इसको हम अनुमान मान लेंगे। अनुमान तो तो श्रुतज्ञान का भेद नहीं है। अनुमान तो मतिज्ञान का भेद है। जैसे कि कहा है—मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्; अभिनिबोध के मायने अनुमान। तो यह शब्द अनुमान है। अनुमान से सब कुछ ज्ञान होता ही है। तो ये सब साधन बन गए। तो उनकी यह तर्कणा अयुक्त है, अरे सीधी बात न मानकर बहुत सोच विचार कर अपने दिमाग को परेशान करना यह कोई मार्ग नहीं है। देखिये अनुमान दो प्रकार के होते हैं—स्वार्थानुमान, और परार्थानुमान याने अपने लिये ज्ञान करना वह भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द द्वारा होता है और दूसरे के लिये अनुमान बताना यह भी शब्दों द्वारा होता है। तो पहली बात तो यह है कि अनुमान की प्रवृत्ति होती है किसी प्रत्यक्ष अर्थ को लेकर। केवल परोक्ष परोक्ष अर्थ में अनुमान नहीं लगता। अगर पर्वत पर धुवाँ दिख रहा है तो अग्नि का अनुमान हो जाता और उस अग्नि को कहीं देखा भी था। जो प्रत्यक्ष का विषय न हो, परोक्ष परोक्ष ही हो, उसमें अनुमान नहीं लगता। स्वर्ग का वर्णन है, नरक का वर्णन है, आगम में परमाणु का वर्णन है, आगे का वर्णन है, आगम प्रमाण है। अगर अनुमान से ही यह बताया जाये तो अनुमान का तो यह विषय है ना ? फिर तो सारा आगम अप्रमाण बन जायेगा। इसलिये शब्द श्रुतज्ञान ही है, अनुमान नहीं। और फिर मान लो कि अनुमान भी माने कोई तो उसमें शब्द की बात तो आ ही गई, इसलिये शब्द द्वारा और ज्ञान द्वारा परिचय हुआ करता है। यह बात यहाँ व्यवस्थित की गयी है।

निर्देशादिक को कर्मस्थता सहित ज्ञान किये जाने का चमत्कार—यहाँ तक बताया गया कि निर्देश आदिक उपायों द्वारा जीवादिक तत्त्वों का ज्ञान होता है, इस सूत्र में विभक्ति के स्थान में जो प्रत्यय लगा है उसे तृतीया और पंचमी विभक्ति बना ली। ये तृतीया और पंचमी विभक्ति कुछ थोड़े-थोड़े मित्र कहलाते हैं, क्योंकि पंचमी हेत्वर्थ में आता है और तृतीया भी तो यह करण और साधन अर्थ में आता, निर्देश द्वारा ज्ञान हो, स्वामित्व द्वारा ज्ञान हो, ऐसे ही छहों अनुयोगों द्वारा ज्ञान हो, पर यहाँ एक बात और खास समझना है कि निर्देश स्वामित्व ये करण कहे गये सो तो ठीक है, किन्तु जब इसको कर्मस्थ निहार कर जाना जाये तो बहुत स्पष्ट बोध होता है। कर्मस्थ के मायने यह है कि जितनी जो सकर्मक धातु होती है उस धातु का प्रभाव कर्ता और कर्म दोनों में होता है तब ही तो सकर्मक कहलाता है। जैसे मनुष्य गाँव को जाता है। यह सकर्मक धातु है जाना। इंगलिश में गो वर्बको सकर्मक नहीं माना। संस्कृत में सकर्मक है। इंगलिश में गो (Go) धातु सकर्मक होती तो टू (To) लगाने की जरूरत नहीं होती। जैसे बोलते हैं ना, ही गोज् टु हाऊस (He goes to house) अगर सकर्मक होती तो टु (to) की आवश्यकता न थी। तो इंगलिश तो नहीं मानती, पर संस्कृत व्याकरण में गम् धातु को सकर्मक माना। यह मनुष्य गाँव को जाता है। तो जाने का सम्बन्ध मनुष्य से भी है, गाँव से भी है। मनुष्य से तो कर्ता रूप में है और गाँव से कर्म रूप में है। तो इस तरह यह निर्देश के द्वारा जाना जाता है, तो जानन हो रहा ना, तो जानन का प्रभाव कर्मरूप से भी होता है और कर्तारूप से भी होता है। तो जब हम कर्मरूप से प्रभाव निरखने चलते हैं तो वहाँ अर्थ यह बनेगा कि निरपेक्ष विशेष्य से विशिष्ट अर्थ को जानना, स्वामित्व विशेषण से सहित पदार्थ को जानना। देखिये कितना स्पष्ट परिचय हो रहा है। पदार्थ को जाना जा रहा है, पर ये निर्देश आदिक गुण विशेषण न हों तो पदार्थ का जानना क्या ? किसी ने किसी पदार्थ को तो जाना मगर विशेषण कुछ न जाना तो जानना बन सकेगा क्या ? जब भी कोई जिसको भी जानता है वह विशेषण सहित पदार्थ को जानता है। विशेषण रहित पदार्थ कोई होता ही नहीं है तो जानेंगे कैसे ? भले ही भिन्न-भिन्न रूप से देखा जाता कि देखो यह तो विशेष्य है और यह विशेषण है, पर विशेष्य विशेषण निराले-निराले हुआ नहीं करते। विशेष्य रहित विशेषण कुछ नहीं, विशेषण रहित विशेष्य कुछ नहीं। तो पदार्थ का जो परिचय होता है निर्देश रूप से, वहाँ इस ढंग का परिचय होता कि निर्देशता सहित वस्तु का ज्ञान हुआ अर्थात् किसका निर्देश किया जा रहा, इस निर्देश्यमानता सहित वस्तु का ज्ञान चल रहा है। तो ऐसे जब हम इन ६ अनुयोगों को कर्मस्थ बनाते हैं, कर्म के विशेषण बनाते हैं तो यहाँ भी अनुयोग प्रमाणनयात्मक बरा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बार चल रहा है। वस्तु को सर्व रूप से जाना प्रमाण हो गया कि एक देश को जाना तो नय हो गया। अब देखिये - आचार्य महाराज को सूत्र रचना करते समय इतनी देर नहीं लगती कि वह भारी बात विचारें कि इसका यह भी अर्थ है, यह भी प्रभाव है, ···, वे तो बस पलक उठाया और लिखते चले जाते हैं।

कर्मस्थ निर्देशादिक के परिचय में विशेष निर्दोषता - कर्मस्थ साधन की निरुक्ति समझकर यह भी जानो कि सूत्र रचना करने वाला पुरुष कितना प्रकाण्ड बुद्धिमान होता है। ज्यादह विचार में नहीं पड़ता और लिखता जाता है और उसमें इतनी विशेषतायें इतने तत्त्व, मर्म, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता और शब्द शास्त्र की अनुगमता आदिक सब कुछ समाविष्ट होते जाते हैं। कहने को सीधी सी बात – निर्देश के द्वारा पदार्थ का अधिगम होता है। उसमें यह भी अर्थ है कि निर्देश्य विशेषण सहित पदार्थ का अधिगम होता है। अब इसमें निर्देशत्व और निर्देश्य ये दो जुदे जुदे धर्म हो गये। निर्देशत्व तो है कारण और निर्देश्य है कर्म फिर भी ये जुदे-जुदे नहीं हैं। प्रयोजनवश जुदे हैं और वस्तुतः जुदे-जुदे नहीं हैं। तो ऐसे इस कर्मस्थ के द्वारा यह जाना जाता है। केवल एक दृष्टि से निहारा जाये तो कर्मस्थ विशेषण बना दिया जाये तो उसमें बड़ी सुविधा है और करण साधन बनाते हैं तो उसमें एक अड़चन आती है, क्या, कि वस्तु का परिचय निर्देश के द्वारा होता है। तो निर्देश का परिचय फिर दूसरे निर्देश द्वारा कहना पड़ेगा, उस दूसरे निर्देश का परिचय तीसरे निर्देश द्वारा कहना पड़ेगा। यों बढ़ाते चले जावें तो कहीं ठहर नहीं सकते। जो भी निर्देश आयेगा वह अन्य-अन्य निर्देश के द्वारा जाना जायेगा। तो करण साधन की मुख्यता करने में अवस्था दोष आ सकता है मगर कर्मस्थ बनाने में अनवस्था दोष नहीं है। याने निर्देशत्व विशेषण सहित पदार्थ को जानना। निर्देश और पदार्थ ये दोनों अभेद वस्तु हैं, दोनों ही जानने के कर्म बन रहे हैं इसलिये वहाँ अनवस्था की आपत्ति नहीं आती यद्यपि अनवस्था की आपत्ति तो करण साधन में भी नहीं आती, कब ? जहाँ तक हमारी जिज्ञासा चलती है वहाँ तक तो अनवस्था चलती है मगर जहाँ जिज्ञासा शान्त हो जाती है वहाँ फिर अनवस्था नहीं चलती। लेकिन कर्म-विशेषण बनने में अनवस्था का जरा भी अवकाश नहीं। तो इस तरह सूत्र का अर्थ हुआ निर्देशत्व सहित वस्तु का अधिगम होता, स्वामित्व सहित वस्तु का अधिगम होता, साधनत्व सहित वस्तु का अधिगम होता। इस तरह उन छहों को, जानने वाली वस्तु को विशेषण बनाकर अधिगम किया जाता है। यह बात विशेषतया समझने के लिये भी प्रमाणनयैरधिगमः सूत्र कहने के बाद अलग से सूत्र कहने की सार्थकता होती है।

क्षणिकवाद के सिद्धान्त में निर्देशादिक अनुयोगों की असम्भवता—अनुयोगों की ज्ञानात्मकता की बात तो वहाँ तक चली। अब ध्यान से सुनने लायक वस्तु निर्देश की बात कह रहे हैं कि वस्तु जान ली गई। क्या जान लिया गया ? जो जान लिया गया वह शब्दों से नहीं कहा जा सकता, और, जो शब्दों से कहा जाता वह वस्तु में पाया नहीं जाता। देखिये यह बात कह रहे हैं क्षणिकवादियों की तरफ से। जब तक स्याद्वाद का सम्बन्ध नहीं रहता और उसका विशेष परिचय नहीं होता, तो कभी-कभी एकान्तवाद की भी बात कहते तो भी वह सही जंचती है। ऐसी कई बातें आज भी चल रही हैं कि जिनको अगर स्पष्ट किया जाये स्याद्वाद प्रणाली से तो स्पष्ट ध्वनित होता है कि यह अमुक दार्शनिक का सिद्धान्त है। यह स्वतन्त्रता की सीमा से पार मानने वाला क्षणिकवादी है। वस्तु तो स्वतन्त्र है मगर उस स्वतन्त्रता की सीमा की सोमा तोड़ दियातो एकान्तवाद बन जाता है। जैसे द्रव्य सत् है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वतन्त्र है, अब द्रव्य में होने वाले गुण जो कि सत् के अंश हैं, द्रव्य में उठने वाले पर्याय जो कि सत् के अंश हैं, उन सदंशों को पूर्ण सत् स्वीकार करके उन्हें भी स्वतन्त्र कहना यह बिल्कुल क्षणिकवाद का सिद्धान्त है, स्याद्वाद का मार्ग नहीं है और उस आधार पर यह शंका चल रही है। देखो वस्तु एक समय मात्र होता है, और वह अहेतुक है क्षणिकवाद सिद्धान्त में पर्याय को पर्याय शब्द से नहीं कहते, वस्तु शब्द से कहते हैं, पर वस्तु शब्द कहकर भी ग्रहण उतना करना है जितनी कि एक समय की पर्याय ग्रहण होती है। अर्थात् एक समय की पर्याय ही पूर्ण वस्तु है और वह उत्पन्न होती है तो किसी हेतु से नहीं होती, अहेतुक है, क्योंकि वह वस्तु ही उतनी पूरी है। अब पूर्ण वस्तु जो एक समय में है उसका पूर्व समय से कुछ सम्बंध ही न रहा। रंच सम्बंध नहीं, क्योंकि स्वतन्त्र द्रव्य है। उसका हेतु क्या, दूसरा कोई हेतु हो ही नहीं सकता, न उपादान रूप और न निमित्त रूप, किसी भी प्रकार से वस्तु की उत्पत्ति किसी हेतु से नहीं बनती। तो ऐसा अहेतुक समय मात्र स्थितिक सद्भूत वस्तु, उसका हम परिचय कर रहे हैं, उसका हम लक्षण बना रहे हैं। तो जब तक हम शब्द बोलते हैं उतने में ही अनगिनते समय लग जाते हैं। जब हम शब्द बोल पाये इतने में तो अनगिनते वस्तु उत्पन्न होकर निकल गये। अब जिस वस्तु के लिये हम लक्षण कर रहे वह वस्तु तो बहुत दूर हो गई। जैसे ६०-७० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से रेलगाड़ी चली जा रही हो, उसमें आपको कोई चीज दिखा दिया जाये और दिखते ही उसमें निशाना लगाने लगे तो क्या लगा सकेंगे ? वह तो निशाना लगाने के साथ ही कोई ४-६ फर्लांग दूर निकल गई इसी तरह से जब हम किसी वस्तु का लक्षण बनाते हैं तो लक्षण बनाने में शब्द बोलते हैं, इतने में तो उस जगह अनगिनते वस्तु पैदा हो गये। वह वस्तु तो बहुत दूर हो गया। तो शब्दों द्वारा वस्तु का स्वरूप बताया ही नहीं जा सकता। ऐसा क्षणिकवादी कह रहे हैं, इसलिये निर्देश अनुयोग बेकार है। उसका कोई फल ही नहीं, कोई अर्थ ही नहीं, वह तो व्यवहार है, कल्पना है। कल्पना करते जाओ। पर, वस्तु के सही स्वरूप को कहने वाला कोई शब्द नहीं। जिसके द्वारा पदार्थ निरूपित किया जाता वास्तव में पदार्थ उस रूप तो है नहीं। शब्दों द्वारा पदार्थ का निरूपण होता है। तो पदार्थ शब्द रूप तो है नहीं, तब पदार्थ के स्वरूप को बताने वाले वचन सब मिथ्या हैं, कोरी कल्पना हैं। जो पदार्थ का स्वरूप है, स्वलक्षण है वह अवाच्य है और वह केवल निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा अधिगम्य है। सविकल्प ज्ञान का भी वह विषय नहीं है। जहाँ पदार्थ के स्वरूप का निर्णय किया वहाँ विकल्प आ गया। तो वह विकल्प मिथ्या है। पदार्थ तो स्वलक्षण मात्र है और वह निर्विकल्प प्रत्यक्ष के द्वारा गम्य है। अब देखो क्षणिकवादियों ने वस्तु के लक्षण को जिस तरह से पेश किया - आप कह उठेंगे, वाह, वाह निश्चय नय की हद कर दिया, देखो लगा ना ऐसा, व्यवहार का वहाँ प्रवेश ही नहीं है। निर्देश का वहाँ प्रवेश ही नहीं है। तो निश्चयनय की इतनी पराकाष्ठा यह प्रमाणभूत है क्या ? जा निरंशवादियों ने बताया है। अप्रमाण है, क्योंकि वे एकान्तवाद में चले गये। द्रव्य से सम्बन्ध हटा दिया।

वस्तु के सही परिचय में लाभ की सम्भवताः— स्याद्वाद मार्ग का तत्त्वज्ञान सापेक्ष होता है इसी कारण वह प्रमाणभूत है। केवल एक अंश का कथन सुनकर पूर्ण वस्तु इतना ही है, ऐसा मानकर उसमें राजी हो या उसमें सत्यता का निर्णय बनाना उचित नहीं होता। सत्यता का निर्णय होता है प्रमाण से, सापेक्ष नयों से। हाँ इतनी बात जरूर है कि सापेक्षनय से प्रमाण का परिचय बनाने के बाद फिर जिस नय से हमको हित की अधिक आशा है कुछ उस नय को प्रधान बनावें, इसमें कोई खरावी की बात नहीं है। इसमें शुद्ध निश्चयनय की प्रधानता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखते हैं तो हमको हित में बड़ी मदद मिलती है और बड़ा सन्तोष होता है, निर्विकल्प होने का अवसर मिलता है। तो उसका आश्रय करें, आलम्बन करें, पर भीतर में यह ज्ञान मत रखें कि वस्तु केवल निरंश स्वभावमात्र होती वस्तु द्रव्य क्षेत्र काल भावात्मक है, न कि निरंश स्वभावात्मक है। भीतर का अज्ञान न रखिये और आश्रय कर लीजिए एक नय का। उसमें जीव को हानि नहीं। लाभ भी पायेगा। अगर अज्ञानपूर्वक एकान्त का आश्रय करे तो लाभ नहीं पायेगा। इसलिए स्पष्ट बताया गया है कि प्रमाण से अधिगत पदार्थ के एक देश जानने को नय कहते हैं। यहाँ क्षणिकवादी कह रहे हैं कि सब वचन, सब आगम, सब शास्त्र, सब समझाना, सब मिथ्या है, क्योंकि वस्तु का जो स्वलक्षण है, निजी स्वरूप है वह स्वरूप शब्द द्वारा समझाया ही नहीं जा सकता। तुम शब्दों से समझाओगे, इतने में पदार्थ रहेगा ही नहीं। वह पदार्थ तो एक समय में ही रहता है। तुम क्या समझाओगे? शब्द सब बेकार हैं। इसलिये निर्देश शब्द इस सूत्र से हटा देना चाहिये। निर्देश शब्द अनर्थक है। जब निर्देश अनर्थक शब्द है तो फिर स्वामित्व आदिक सब अनर्थक हो जायेंगे। स्वामित्व आदिक किस बात पर कहा जायेगा? इसलिए सूत्र शास्त्र ये सब बेकार चीज हैं। एक वस्तु का स्वलक्षण का निर्विकल्प प्रत्यक्ष से ज्ञान करे तो मोक्ष हो जायेगा, ऐसा क्षणिकवादी कहते हैं, पर उसमें कोई तीर्थ प्रवृत्ति नहीं बनती उनका कथन अप्रमाण है क्योंकि वस्तु के समग्र स्वरूप का बोध न हो तो वहाँ साधन साध्यपने की बात नहीं बन सकती। मैं सदा रहता हूँ तभी तो मुक्ति चाहिये। मुझमें पर्याय होती हैं तभी तो अज्ञान हट-कर ज्ञान होता, संसार मिटकर मोक्ष होता। यों धर्मपालन उत्पाद व्यय-ध्रौव्यात्मक आत्मतत्त्व को मानने पर बनेगा। ऐसे उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक पदार्थ का यहाँ निर्देश लेना और विशेष जानने के लिये अंशी की अपेक्षा रखकर अंश का भी निर्देश लेना।

साधन अनुयोग द्वारा जीव के परिचय का प्रकरण—हम आप सब जीवों को आवश्यकता है इसकी कि संसार के संकटों से छुटकारा मिले, इसी को कहते हैं मोक्ष और इस मोक्ष का अनुशासन जिससे मिले उसे कहते हैं मोक्ष शास्त्र। मोक्ष शास्त्र में मोक्ष के उपायों का वर्णन है। उपाय पहले बताया गया है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन है प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वों का श्रद्धान वे ७ तत्त्व हैं जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष। इतना सुनने के बाद अब यह प्रसंग आना चाहिये कि इन तत्त्वों की जानकारी सही सम्यग्दर्शन आदिक की जानकारी किस तरह से बनी, क्योंकि तत्त्वों को जाने बिना उनका श्रद्धान कैसे हो? तो उसके उपाय में पहले तो व्यवहार की बात कहा कि चार निक्षेपों से व्यवहार होता है, फिर जानने की बात कहा कि प्रमाण और नयों से इन समस्त तत्त्वों का परिज्ञान होता है। प्रमाण मायने सकलदेशी ज्ञान, नय मायने एक देश निश्चय कराने वाला ज्ञान। तो यह उपाय ज्ञानात्मक है। ज्ञान द्वारा तत्त्वों का ज्ञान किया जाता है। संक्षेप में यह अर्थ हुआ। पर इतने से वस्तु के बारे में कुछ नहीं समझा गया। बस ज्ञान की विशेषतायें ही बतायी गई। जिसका परिचय करना उसके बारे में कुछ संकेत नहीं है। जिसके द्वारा जानना उसका संकेत है। वो इतने मात्र से काम तो न निभेगा। पदार्थ विषयक भी कुछ परिचय तो होना चाहिये, उसी परिचय के लिये इस सूत्र का अवतार हुआ है—निर्देश स्वामित्व साधनाधिकरण स्थिति विधानतः। निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन ६ अनुयोगों से तत्त्वों का ज्ञान होता है। इन ६ प्रकारों में ज्ञान की बात नहीं कही गई है, पदार्थ की बात कही गई है। छठे सूत्र में ज्ञानात्मक उपाय की बात कहा। और इस ७ वें सूत्र में कर्म प्रधान बात कहा। याने जिसको

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानना है उसका परिचय बताया गया है। सबसे पहले निर्देश की आवश्यकता होती है, यह है जिसके बारे में सारे निर्णय बनाता है। उसका कुछ स्वरूप भी बताता है यह है निर्देश और यह किसका स्वामी है ? इसका कौन स्वामी है, इस प्रकार परिचय करना स्वामित्व है, और तीसरा उपाय है साधन का। जैसे सम्यग्दर्शन का परिचय करना। तो उसका साधन क्या ? जीव, अजीव, आश्रव आदिक किसी का परिचय करना तो उसका साधन क्या ? यों साधन के द्वारा पदार्थ का ज्ञान होना यह बात यहाँ चल रही है। जैसे सामान्यतया सम्यग्दर्शन का साधन क्या ? अन्तरंग में तो ७ प्रकृतियों का उपशम क्षय, क्षयोपशम वहिरंग में जिनदर्शन आदिक और उपादान में इस प्रकार की योग्यता वाला जीव उपादान साधन, वास्तविक निमित्त साधन, उपचरित निमित्त साधन।

साधन अनुयोग की व्यर्थता की आशंका – अब इस प्रसंग में जब किन्हीं दार्शनिकों ने सुना कि आचार्य महाराज साधन के द्वारा वस्तु के परिचय की बात कह रहे हैं। तो कोई दार्शनिक यहाँ टोक देता है कि महाराज जरा रुको। पहले इस साधन की तो सिद्धि कर लो। साधन भी दुनिया में कोई होता है क्या ? फिर साधन के द्वारा वस्तु काप रिचय कराना। पहले साधन को सिद्ध करने के साधन ही तो बतायें। साधन नाम की कोई चीज नहीं होती। दार्शनिक कह रहे हैं। साधन मायने कारण। तो यह बतलाओ कि साधन किसी सत् को सिद्ध करता है या असत् को सिद्ध करता है। जो कार्य सत् हो उसके लिये साधन की जरूरत क्या ? याने जो कार्य नहीं है, असत् है, उसकी सिद्धि के लिये साधन की जरूरत नहीं। अगर कहें कि जो सत् है, सद्रूप है उस कार्य को बनाता है साधन। तो भला सोचो कि जो सद्रूप है, है ही है, पहले से ही है, उसके लिये साधन की आवश्यकता क्या ? तो साधन सद्रूप को तो बनाता नहीं। वह तो है ही बना बनाया और यदि कहें कि वह असत् को बनाता है, जो नहीं है उसको बनाने के लिये साधन चाहिये। तो जो नहीं है वह किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। कहीं असत् भी सत् बन सकता है ? सत् का कभी अभाव नहीं। असत् का कभी प्रादुर्भाव नहीं। तो असत् को बनाने के लिये साधन बेकार है। असत् बन ही नहीं सकता, फिर साधन नाम की कोई भी वस्तु नहीं है। साधन की क्या आवश्यकता ? साधन सत् के लिये भी बेकार, साधन असत् के लिये भी बेकार। इसमें यदि कोई यह गुंजाइश निकाले कि जो कार्य होता है वह प्रागभाव का प्रतियोगी होता है। मतलब जो कार्य जिस समय होता है उससे पहले उस कार्य का अभाव है ना। इसे कहते हैं प्रागभाव। इस प्रागभाव का विनाश हो तो कार्य बन गया। तो साधन जो है वह प्रागभाव का विनाश करने में काम करता है। कार्य अपने आप बनेगा – क्योंकि कार्य के सम्बन्ध में तो दो बातें रख दी थीं कि अगर कार्य है पहले से तो साधन बनायेंगे क्या ? और काम नहीं है तो साधन बना ही नहीं सकते उसे। इसके जवाब में अगर यह कोई कहे कि काम न था, इस न को मिटाने के लिये साधन नियुक्त है, तो भला आप बतलाओ क्या ये दो बातें हैं ? न को मिटाना और कार्य को बनाना। इसके क्या दो जुदा अर्थ हैं ? बात तो वही आ गयी। जो कार्य सत् है उसको बनाया। तो पहले साधन की सिद्धि नहीं होती। तब साधन के द्वारा किन्हीं तत्त्वों के सिद्ध करने का प्रयास व्यर्थ है। मोक्ष शास्त्र में जो शब्द-रचना है एक-एक शब्द पर अनेक दृष्टियों से विचार करें तो सूत्रकर्ता की प्रतिभा, युक्ति, तब परिचय बनता है कुछ। इस विषय में कोई समाधान बन न सकेगा, स्याद्वाद का सहारा लिये बिना। बतलाओ बात बिल्कुल स्पष्ट है। अगर कार्य है तो साधन को जरूरत क्या ? और नहीं है तो साधन ला कहाँ से देगा ? उत्तर देगा स्याद्वाद। कि द्रव्य रूप से वस्तु सत् है, पर्याय रूप से वस्तु असत् है, और उसमें जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और समाधान है वह सब आगे आयेगा। अब तो शंकाकार की शंका को देखिये कि कितनी चतुराई से शंका रख रहा है।

साधन शब्द की अप्रयोजकता के विवरण में कार्यकारणभाव की चर्चा—साधन की अप्रयोजकता को और विस्तार से समझना है तो देखिये—जैन तो ले लें ऋजु सूत्रनय और क्षणिकवादी ले लें अपने एकान्त को। शंका की ओर से सुनो। साधन मायने कारण। कारण तब ही चाहिये जब कार्य हो। तो मायने कारण कार्य भाव हो। तो यहाँ क्षणिकवादी या ऋजु सूत्रनय का एकान्ती यह कह रहा है कि जब जो कार्य होता है वह तो निरपेक्ष है। वह किसी कारण से नहीं होता, क्योंकि उसका कारण बतावेंगे पहली अवस्था। जिस समय पहली अवस्था है उस समय कार्य नहीं। जिस समय कार्य है उस समय कारण नहीं। तो कारण कार्य भाव कैसे बन जायेगा? यह क्षणिकवादी कह रहे हैं, पर जैनों में भी कुछ लोग ऐसा ख्याल कर डालते हैं। उत्तर पर्याय का कारण कोई नहीं, क्योंकि कारण के समय कार्य नहीं, कार्य के समय कारण नहीं। अब रही एकान्त की बात। तो जैसे क्षणिकवादी इसका एकान्त करते हैं इस तरह कुछ आधुनिक आध्यात्मिक इसका भी तो एकान्त करने लगे। उस ही दृष्टि से यह शंका है। देखिये—कारण कार्य सम्बन्ध दो में होता है, एक में तो होता नहीं है। तो कारण और कार्य सहभावी हैं नहीं। जिसकी चर्चा है उसे देखिये—उपादान की दृष्टि से पूर्वपर्याय कारण उत्तर पर्याय कार्य। वे दोनों सहभावी हैं नहीं। तो उनमें कार्य कारण का सम्बन्ध कैसे बनाया जाये? सम्बन्ध तब बनता है जब दो वर्तमान में हो। सो जब कारण कार्य सम्बन्ध ही नहीं तो साधन ही क्या रहा? इसलिये साधन की बात कहना व्यवहार है। ऐसी एक आशंका है। समाधान उसका मिलाकर समानता से यह है कि यदि कारण कार्य एक साथ न होने से उनमें कारण कार्य सम्बन्ध नहीं तो अकारण अकार्य भी नहीं बोल सकते। यह भी तो एक असम्बन्धरूप सम्बन्ध है। जब दोनों साथ नहीं तो यह भी निर्णय न कर सकेंगे कि अकारण है कि अकार्य। साधन के द्वारा वस्तु का परिचय कराने के प्रसंग में साधन को सिद्ध करने की बहुत लम्बी शंका है। उसका समाधान भी होगा। उसके बाद स्वयं यह समझेंगे कि साधन बिना साध्य नहीं बनता।

साधनों की त्रिप्रकारता का दिग्दर्शन—भैया! साधन के प्रसंग में समझिये कोई होता है उपचरित साधन, कोई होता है वास्तविक साधन, कोई होते उपादान साधन। जैसे दृष्टान्त लो—घड़ा बनाया तो उसमें उपादान साधन मिट्टी है और निमित्त साधन बाकी सब। अजीव अजीव के प्रसंग में उपचरित साधन नहीं हुआ करते। वहाँ केवल उपादान और निमित्त ही होता है, किन्तु जीव की विकार दशा में ३ साधन होते हैं—उपादान वास्तविक निमित्त और उपचरित। जैसे क्रोध प्रकृति का उदय आया, जीव ने क्रोध किया तो वहाँ इस व्यक्त क्रोध के होने में तीन साधन मालूम पड़ेंगे। क्रोध की योग्यता वाले जीव उपादान साधन, क्रोध प्रकृति का उदय वास्तविक निमित्त साधन और जिस बाहरी पदार्थ को लक्ष्य में लिया, जिसमें उपयोग जोड़ा, ऐसा विषयभूत साधन उपचरित साधन याने नोकर्म, परन्तु अजीव अजीव की चीजें हों तो चूँकि वहाँ उपयोग बाहर में नहीं है। जड़ है, अचेतन है इसलिये उपचरित साधन की बात वहाँ न मिलेगी। तो इस दृष्टि से जीव की अच्छी पर्याय के लिये, खोटी पर्याय के लिए इन तीन साधनों को जानना चाहिये। शुद्ध पर्याय के लिए तीन साधन नहीं होते। लेकिन जब खोटी पर्याय चल रही है और खोटी पर्याय मिटकर एक शुद्ध पर्याय में आता है तो उसके प्रारम्भ में तीन साधन बन सकते हैं। पर शुद्ध पर्याय के लिए उपचरित साधन नहीं होते। जैसे सम्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्त्व की उत्पत्ति में उपादान साधन है स्वयं यह जीव और अन्तरंग निमित्त या वास्तविक निमित्त अथवा अन्वयकतिरेकी निमित्त कहो, वह है ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम और बाह्य साधन नोकर्म, उपचरित, किन्हीं शब्दों से कहो वे सब हैं जिन बिम्ब दर्शन, उपदेश, ज्ञानियों का संग। ये सब बाह्य साधन हैं। बाह्य साधन और वास्तविक साधन इनमें अन्तर समझकर यह बताना चाहिए कि उपचार किया जाता है तो केवल नोकर्म पर किया जाता है। वास्तविक निमित्त पर निमित्तपने का उपचार नहीं किया जाता। वह तो निमित्त है। हाँ वास्तविक निमित्त की जानकारी होती है वहाँ इतनी बात कह सकते हैं कि कार्य होने के बाद निमित्त की जानकारी होती है। सम्यक्त्व हुआ तो समझ में आया कि इसकी ७ प्रकृतियों का उपशम आदिक हुआ वह निमित्त है, पर निमित्तत्व के लिये उपचार नहीं है। जानकारी के लिये आरोप है। निमित्तपने का आरोप बाह्य साधन में होता है। जैसे क्रोध का उदय हुआ और किसी नौकर आदिक पर गुस्सा आया तो नौकर पर निमित्तपने का उपचार है, पर क्रोध प्रकृति पर निमित्तपने का उपचार नहीं है। वहाँ पर तो ऐसा ही गणित है कि जैसे अग्नि पर पैर धरे कोई तो वह जले। चाहे अग्नि को जान रहा हो तो, न जान रहा हो तो, ऐसे ही क्रोध प्रकृति का उदय क्षण ऐसा निमित्त है कि कोई नोकर्म में उपयोग जोड़ रहा हो तो, न जोड़ रहा हो तो, उसके भी क्रोध का विकार है। जोड़ेगा तो व्यक्त रूप होगा, न जोड़ेगा तो अव्यक्त विकार होगा और कर्म की तो खबर ही नहीं फिर कैसे कहें कि उस क्रोध प्रकृति में उपयोग जोड़ा तो निमित्त कहलाया। उसको जानता ही नहीं। हाँ आलम्बन इतना अवश्य है कि जब क्रोध कर्म प्रकृतिविपाक होता है तो प्रतिफलन ऐसा हुआ कि ज्ञान स्वभाव का तिरस्कार हो गया तब ज्ञान ज्ञानस्वभाव से च्युत होकर बाह्यार्थ में उपयोग जोड़ने लगा व विकारको आत्मसात् करने लगा। तो क्रोध प्रकृति का उदय वास्तविक साधन है क्रोध का और स्वयं जीव उपादान साधन और बाह्य विषयभूत पदार्थ बाह्य साधन होते हैं। इसका परिचय हो तो मनुष्य सावधान तो हो जायेगा कि ये बाह्य साधन विकार के हैं इनसे दूर रहो। ये बाह्य साधन हमारे सद्भाव के हैं, इनको ग्रहण करें, और जब अन्त में यह विदित होगा कि शुद्ध भाव निरपेक्ष भाव है, उसमें उपचरित साधन नहीं होते तो प्रयास करेंगे समस्त वस्तुओं के विकल्प छोड़ने का। तो साधन के परिचय से वस्तु का सही परिचय होता है ओर वस्तु का सही परिचय हो तो मोक्ष मार्ग के लिये हमको एक रास्ता मिलता है। तो उसी साधन के विषय में ये चर्चायें चल रही हैं।

साधन की साधना से पहिले साधन अनुयोग की बात कहने की अयुक्तता की चर्चा—निर्देश स्वामित्व आदिक सूत्र में साधन के विषय में चर्चा चल रही है, साधन से तत्त्व का परिचय होता है। तो पहले साधन का साधन करने की ही गले पड़ रही है। पहले साधन की साधना बनावें। जब साधन सिद्ध हो जाये तब साधन के द्वारा वस्तु का परिचय करें। साधन का अर्थ है कारण। कौन सी वस्तु किस कारण से उत्पन्न होती है इसके निर्णय को कहते हैं साधन से अधिगम। जहाँ कारण की बात कही गयी वहाँ कार्य भी आ गया। कारण कार्य का सम्बन्ध बताना है। तो यहाँ ऋजुसूत्रनय का एकान्त करने वाले दार्शनिक यह आशंका रख रहे हैं कि जब कोई पदार्थ दूसरे समय ठहरता नहीं, किसी पर्याय का किसी अन्य से कुछ सम्बन्ध नहीं तो भिन्न-भिन्न काल में रहने वाले पदार्थ में कारण कार्य सम्बन्ध कैसा? अग्नि कारण है, धूम कार्य है, तो अग्नि और धूम दोनों एक साथ पाये तो जा रहे हैं। एक साथ पाये जाने वाले दो पदार्थों में कारण कार्य सम्बन्ध बनता है और जब उत्तर पर्याय है तब पूर्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पर्याय है नहीं, तो यह पर्याय भी तो स्वतन्त्र है। कोई पर्याय किसी पर्याय के कारण नहीं होती। यह ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से कहा जा रहा। जिसे क्षणिकवादी सर्वात्मक दृष्टि से ऐसा मानते हैं। तो जिस क्षण में जो पर्याय है उस क्षण में जिसे कारण कहते हैं, वह पूर्व पर्याय है नहीं। तो जो नहीं है वह कार्य का कारण कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में सामान्यतया यह कहा था कि जैसे भिन्न-भिन्न समय में रहने वाली दो चीजों में कारण कार्य सम्बन्ध नहीं बनता ऐसे ही अकारण अकार्य भी न बनेगा। जैसे लोग दो पदार्थों में कारण कार्य की खोज करते हैं ऐसे ही लोग अकारण अकार्य की भी तो बात करते हैं। जैसे आकाश से आत्मा नहीं हुआ ? तो आकाश और आत्मा में अकारण अकार्य सम्बन्ध तो बताया। तो जैसे जो सहभावी नहीं हैं उनमें कारण कार्य सम्बन्ध नहीं बनता, ऐसे ही जो सहभावी हों या न हों, सहभाव न हो उनमें अकारण अकार्य भी न बनेगा। अर्थात् पूर्व पर्याय उत्तर पर्याय का कारण नहीं है, उत्तर पर्याय पूर्व पर्याय का कार्य नहीं नहीं है ऐसा अकारण अकार्य सम्बन्ध भी तो तब ही कह सकेंगे जब कि दोनों एक साथ हों। इसका उत्तर युक्तियों से भी दिया जायेगा, पर अभी तो समानता से जवाब चल रहा है। शंकाकार कहता है कि कारण कार्य सम्बन्ध जब तक सिद्ध न हो तब तक साधन की बात कहना बेतुकी बात है।

ध्रुव द्रव्य में अव्यवहित पूर्व उत्तर पर्याय में कारण कार्य सम्बन्ध की चर्चा—यदि कोई सम्बन्धवादी जैन या नैयायिक वगैरह यह कहें कि चलो एक साथ तो नहीं है कारण कार्य मगर कारण कार्य का सम्बन्ध पहले कारण से बन लेगा पीछे कार्य से बन लेगा। तो क्रम से होने वाले पदार्थों में पहले कारण में सम्बन्ध हो गया फिर कार्य में सम्बन्ध हो जायेगा। इससे तो कार्य कारण सम्बन्ध बन सकता है। तो समाधान में शंकाकार कह रहा है कि ऐसा मानने में भी जब तक अपेक्षा की बात न बतावेंगे तब तक भिन्न काल में सम्बन्ध नहीं बन सकता। मानो उस कार्य कारण सम्बन्ध में कारण के समय में कारण से सम्बन्ध बनाया और फिर वही अगले समय में कार्य से बनाया तो जब भिन्न काल में बनाया तो सम्बन्ध कैसे ? अपेक्षा हो तब ही तो सम्बन्ध है, याने कारण व कार्य की अपेक्षा करके कारण कार्य सम्बन्ध पूर्व पर्याय से बनाये, उत्तर पर्याय से बनायें तो बन जायेगा यों अपेक्षा तो माननी ही होगी और अपेक्षा तब ही बनती है जब कि दूसरा उपकारी हो। करने का कार्य नहीं है, तो अपेक्षा से क्या मतलब ? क्योंकि दूसरे की अपेक्षा न करे और एक में ही ठहरे तो उसे सम्बन्ध कैसे कह सकते ? जो पदार्थ अब तक उत्पन्न नहीं हुआ उसकी अपेक्षा कैसे ? दूसरा जब नहीं है तो सम्बन्ध कैसे बनेगा ? एक में सम्बन्ध नहीं बनता। कारण के समय कारण ही है, कार्य के समय कार्य ही है। तो सम्बन्ध कैसे बनेगा ? इसके समाधान में यों कह सकते कि अकारण अकार्य सम्बन्ध भी कैसे बनेगा ? जब भिन्न-भिन्न काल में दोनों हैं तो कैसे कह सकते कि यह इसका कारण नहीं है, यह इसका कार्य नहीं है। तो जैसे भिन्न काल में अकारण अकार्य भी नहीं बता सकते, तो यों न बताने का अर्थ है कि कार्य कारण बन गया। अगर किन्हीं दो बातों में अकारण अकार्य की सिद्धि नहीं कर सकते तो इसका अर्थ ही यह हुआ कि उनमें कारण कार्य है। क्षणिकवाद में ही ऐसी आशंका चलती है कि पहले कारण में सम्बन्ध बनेगा फिर कार्य में सम्बन्ध बन जायेगा, तो भाई अपेक्षा बिना उसे सम्बन्ध नहीं कह सकते। और, अपेक्षा अगर करते हैं तो उसे उपकारी समझना चाहिये। जब कार्य के समय में कारण नहीं है, कारण के समय में कार्य नहीं है, जैसे मिट्टी का लोंधा घड़ा बनने का कारण है, तो जब घड़ा बन गया तो लौंधा रहा क्या ? तो लौंधा के समय घड़ा नहीं, घड़ा के समय लौंधा नहीं—तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपकारी कैसे रहा ? कौन किसका उपकार कर सकता ? जैसे जो चीज है ही नहीं वह किसी की उपकारी बने क्या ? तो जब घड़ा नहीं है तो लौंधे का उपकारी कैसे बनेगा कि तुम कारण कार्य सम्बन्ध बनवालो । कारण कार्य सम्बन्ध इस तरह भी नहीं बनता । यह जैसी आशंका क्षणिकवादी के चित्त में है तो उत्तर में यह ही बात अकारण अकार्य में भी कह सकते । अकारण अकार्य सम्बन्ध भी कैसे बन गया ? और, अकारण अकार्य सम्बन्ध नहीं बन सकता तो इसका अर्थ है कि कारण कार्य हो गया । शंकाकार यह भी सन्देह कर सकता है कि कोई सम्बन्धवादी यह भी कह सकता कि कारण कार्य सम्बन्ध एक अर्थ है, एक तत्त्व है, उससे बँधे हैं कारण और कार्य और इस तरह सम्बन्ध बन जायेगा । जैसे कि और लोग भी कहते हैं कि दो केले रखे हैं तो कहते हैं ना कि ये दो हैं । तो बताओ दो संख्या का किसमें सम्बन्ध है ? पहले केले से सम्बन्ध है या दूसरे केले से ? अगर पहले केले से है तो दूसरे में न रहा तो दो कैसे ? और दोपन का सम्बन्ध दूसरे केले से है, और पहले केले से नहीं तो दो कैसे ? और वे दो केले रखे हैं ५-५ अंगुल के फासले पर, तो एक सम्बन्ध दो में कैसे लग जायेगा ? यह भी बिना समझे ही शंका रहती है । वहाँ प्रत्यासत्ति का सम्बन्ध है । कोई समीपता की बात चित्त में होती है तो सम्बन्ध बनता है । तो कारण और कार्य में पूर्व उत्तर या साधन साध्य का सम्बंध है इसलिये कारण कार्य सम्बंध बन जायेगा । शंकाकार कहता है कि ऐसा कहने पर तो जिस चाहे में सम्बंध बना डालें । बछड़े के दो छोटे सींग उगते हैं तो बताओ दाहिने सींग के कारण से बाँया सींग बना या बायें सींग के कारण से दाहिना सींग बना ? आखिर दो तो हैं ही । उनमें भी सम्बंध बन जायेगा । कारण कार्य समीप तो हैं ही, ऐसी उलाहना देने वाले शंकाकार को अकारण अकार्य की बात भी तो सोचना चाहिये । अकारण अकार्य भी कैसे बनता सो बताओ ।

एक द्रव्य में पूर्वोत्तर अवस्थाओं की समझ में सर्व समस्याओं का समाधान – यहाँ बात तो सीधी चल रही थी कि वस्तु का परिचय स्वामी बताकर भी किया जा सकता, यह इसका मालिक है । साधन बताकर भी किया जाता कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के ये कारण हैं । यह बात सीधी चल रही थी और आगे झट अन्य जानकारी चलती लोग समझते ही, मगर आचार्यों का उपदेश तो सबके उपकार के लिये है । किसी भी दर्शन का विद्वान हो वह भी लाभ ले । तो भिन्न-भिन्न बुद्धि के लोग जब सुनने वाले होते हैं तो वे अपनी शंका रख सकते हैं । तो शंका यह रखी गई कि पहले साधन की सिद्धि हो तो नहीं बनती, फिर साधन से सिद्ध करना कि सम्यक्त्व कैसे होता ? अरे सम्यक्त्व जब होगा तब होगा, अपने आप होगा, बिना कारण होगा । वह अपने समय में स्वतन्त्र है । उसके लिए साधन बनाने की जरूरत क्या है ? ऐसी आशंका क्षणिक एकान्तवादी रख रहे हैं । पहले साधन सिद्ध करें । यह सिद्धान्त है ऋजु सूत्रनय के एकान्त का । जिसको बुद्धि में पूर्ण वस्तु नहीं आ सकती है नित्यानित्यात्मक वस्तु, उसे यह आशंका हो सकती है । पर्याय ही पूर्ण पदार्थ है और वह बिना कारण से उत्पन्न हुआ है अपने आप हुआ है, यह बात जब ऋजुसूत्रनय को दृष्टि में रखी जाये तब यह बात बिल्कुल युक्त है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि पर्याय बिना कारण के होती है । पर्याय स्वतन्त्र है, किन्तु यह सिद्धान्त ऋजुसूत्रनय का है । इसका ही कोई एकान्त करे तो न व्यवहार चलेगा न तीर्थ चलेगा । यदि पर्याय स्वतन्त्र है तो फिर वह पर्याय अनुरूप क्यों हुई ? चेतन में चेतन के अनुकूल, अचेतन में अचेतन के अनुकूल पर्याय क्यों बनती ? और अब नया आत्मा बना, तुरन्त बना हम एक-एक शब्द बोलते हैं जितनी देर में उतनी देर में तो करोड़ों आत्मा तैयार हो जाते भिन्न-भिन्न, क्षणिकवाद के सिद्धान्त के अनुसार तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस वक्ता का जो आत्मा है वह पुराने आत्मा ने जो ज्ञान किया उसी सिलसिले को लेकर क्यों ज्ञान करता है और उसी परम्परा से क्यों बोलते हैं ? तो नये-नये आत्मा बने तो फिर कोई शब्द भी नहीं बोल सकता। एक ने बोला कुछ, एक ने बोला कुछ। तो फिर शब्द संकेत कैसे बनेगा ? एक वाक्य बोलता है तो बिल्कुल सही क्यों बोला जा रहा ? सेकेण्ड के हजारवें हिस्से में नया-नया जीव बन रहा फिर क्या वजह है कि अनेक समय में बोले जाने वाले वाक्य सही वर्ण अक्षरों में बोले जाते हैं। एक जीव माने बिना बात नहीं बन सकती। एक जीव है, ख्याल बना है, संस्कार बना हुआ है, नये-नये क्षण में हम नया अक्षर बोलते हैं, मगर जीव तो एक है तो ठीक सिलसिले से क्रमपूर्वक बोलने में आ जाता है, दूसरी बात अगर इस तरह कारण कार्य से भिन्न स्वतन्त्र पूर्ण द्रव्य मान लिया जाये और एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं तो भला बतलाओ मैं जो सोचता हूँ उसका ज्ञान आप तो नहीं करते। आप सोचते हैं तो उसका ज्ञान हम नहीं करते, क्योंकि आप जुदे जीव हैं, मैं जुदा जीव हूँ, अब एक ही शरीर में जब जुदे-जुदे जीव ही लगातार पैदा हो रहे हैं तो इस समय का जीव पहले समय के जीव की बात को कैसे जानता ? कैसे जाने ? तो मालूम होता है कि भिन्न-भिन्न द्रव्य नहीं हैं मुझमें, आपमें, किन्तु प्रत्येक में स्वतन्त्र ध्रुव एक एक ही आत्मा है और उसकी निरन्तर परिणतियाँ चलती रहती हैं।

द्रव्यपर्यायत्मक वस्तु में द्रव्यपर्यायविषयक प्रश्नवश मतद्वैविध्य—वस्तु का स्वरूप सिद्ध करने के लिये अनेक दार्शनिकों ने खूब श्रम किया और जैसा आसानी से या बड़ी कड़ाई की दृष्टि रखकर जो कुछ जचा उस रूप में वस्तु स्वरूप की बात कही। लेकिन स्याद्वाद का सम्बन्ध न रखने के कारण वस्तु स्वरूप की सिद्धि में सफल नहीं हो सकते। एक आत्मा को ही ले लो, बतलाओ आपका आत्मा सदा रहने वाला है या क्षण-क्षण में नष्ट होने वाला है? जितने प्रश्न हैं उतने ही दर्शन हुये। जितनी जिज्ञासाएँ हैं उतने ही लोग दार्शनिक हैं। जैसे कहने को एक जैन दर्शन, पर जैन दर्शन को मानने वाले भी जितने लोग हैं उनमें भी तो परस्पर मतभेद है, दृष्टि भेद है। यहाँ भी अनेक दार्शनिक हैं। कहने को ६-७ दर्शन हैं, लेकिन प्रत्येक दर्शन में अनेक विध दार्शनिक पाये जाते हैं। जितनी दृष्टियाँ हैं उतने दर्शन हैं। तो जब ये प्रश्न दो हों कि बतलाओ जीव सदा रहता है या क्षण-क्षण में नष्ट होता है ? तो एक ने यह हठ पकड़ ली कि जीव सदा रहता है, वह बदलता भी नहीं है। उसमें परिणति भी नहीं होती। परिणति शून्य एक ब्रह्ममात्र तत्त्व है तो एक ने यह एकान्त कर लिया कि नहीं, बिल्कुल भिन्न-भिन्न जीव हैं। जो एक समय का जीव है वह दूसरे समय नहीं रहता। जैसे कि मनुष्य मरकर पशु बन गया तो रहा तो नहीं वहाँ कुछ। नया बन गया कोई। अब वह जीव तो न रहा, एक नया जीव बन गया। जैसे मोटे रूप में समझ में आता। अगर वही जीव है तो पशु होने पर भी मनुष्य की पूरी बात याद रहना चाहिये। एक दृष्टान्त रूप में, तो उससे सिद्ध है कि वह जीव और है व वह जीव और है, तो ऐसे ही एक मनुष्य शरीर में भिन्न-भिन्न समय में जो जीव बनता रहता वह भिन्न-भिन्न है। ऐसा क्षणिक एकान्तवाद की दृष्टि में आया। यहाँ क्षणिकवादियों से एक प्रश्न किया जावे कि एक जो सिलसिला बन रहा है, संस्कार बन रहा वह कैसे ? तो क्षणिकवादी दृष्टान्त देते हैं कि जैसे सरसों के तेल का दीपक जलाये कोई तो उसमें दीपक भिन्न-भिन्न बूँद के बनते रहते हैं, जिस बूँद का दीपक अभी बना वह दीपक कितनी देर ठहरेगा ? दूसरी बूँद उसके पास आयी तो दूसरा दीपक बन गया। तीसरी बूँद आयी तो तीसरा दीपक बन गया। इस तरह जैसे भिन्न-भिन्न वे दीपक बनते रहते हैं, एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दीपक का दूसरे दीपक से सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वह सिलसिला ऐसा है, वह संतति ऐसी है कि किसी को यह अन्दाज नहीं हो पाता कि ये नये नये दीपक जल रहे हैं। नये-नये दीपक जलकर भी समझ में नहीं आ पाता कि ये नये-नये दीपक हैं। सभी लोग कहते हैं कि यह वही दीपक है जो आधा घण्टे से जल रहा है। ऐसे ही क्षणिकवादी कहते हैं कि एक शरीर में भिन्न-भिन्न जीव होते रहते हैं। भिन्न-भिन्न जीव होते रहने पर भी किसी की समझ में यह नहीं आ पाता कि ये न्यारे-न्यारे जीव हैं। संतति संज्ञा इस तरह चल रही है कि सब लोग यह समझते हैं कि वही एक जीव है।

द्रव्यपर्यायात्मक आत्मा में मुक्ति की रीति की चर्चा – क्षणिकवाद का यह सिद्धान्त है कि जिस दिन यह समझ जायेगा कि भिन्न-भिन्न जीव हैं, यह एक समय पहले न था, एक समय बाद भी नहीं होता, बस उसको मोक्ष मार्ग मिलने लगेगा, निर्वाण हो जायेगा उसका, क्योंकि मोह न रहेगा। मैं पहले था ही नहीं, यह तो नया जीव है। सम्बन्ध क्या है पहले से ? संस्कार को मिटायेगा, निर्मोह बनेगा, बंध रुकेगा, मोक्ष हो जायेगा। तो मोक्ष होने की तरकीब तो अच्छी निकाली क्षणिकवादियों ने कि हम पहले समय की बात से सम्बन्ध न रखें, भिन्न ही जानें, लेकिन वस्तु स्वरूप के विरुद्ध चलकर अन्य रीति से मोक्ष की तरकीब निकालें तो वह प्रयोग कब कैसे बनेगा ? मोक्ष मार्ग तो यों है कि भले ही भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न पर्यायें हो रही हैं लेकिन ये पर्यायें सदा नहीं रहतीं। पर्यायें क्षणिक हैं। ये मेरे भले के लिये नहीं हैं। इनके आश्रय में उपयोग भ्रमेगा, उपयोग आकुलित रहेगा, इसलिए समस्त क्षणिक पर्यायों का आश्रय न करना, किन्तु इन समस्त पर्यायों का आधारभूत जो सहज स्वभाव है, आत्मस्वरूप है उसका आश्रय करना। यों तो मोक्षमार्ग बनता है, पर यों न बनाना चाहिए कि क्षणिक एकान्त मानकर यों सोचें कि मेरा पहले कुछ सम्बन्ध ही नहीं, आगे कुछ सम्बन्ध ही नहीं। मैं तो एक समय रहकर मूलतः मिट जाता हूँ। इससे पार न पड़ेगा। आत्मा को इन अवस्थाओं के प्यार से कोई लाभ नहीं। इन अवस्थाओं की प्रीति तजकर अवस्थाओं के आधारभूत त्रैकालिक आत्मस्वभाव का आश्रय लूँ, उसे ही मैं आत्मा मानूँ तो निर्विकल्प स्थिति बन सकती है। प्रयोजन तो निर्विकल्प स्थिति से है ना। और, इस तरह भी न बन सकेगा कि आत्मा को अपरिणामी मानें। वह तो एकस्वरूप है। अपरिणामी है, उसमें कष्ट ही नहीं, उसमें संसार ही नहीं। ऐसी दृष्टि बनायेंगे तो मोह न रहेगा, तो यह भी वस्तु स्वरूप के विरुद्ध बात कहकर दृष्टि बनवाई गयी है। यदि अपरिणामी है कोई पदार्थ, तो वह सत् ही नहीं है। जिसकी अर्थक्रिया नहीं, जिसका परिणमन नहीं, जिसका कोई रूपक नहीं, जिसकी कोई अवस्था ही नहीं है वह सत् नहीं हो सकता। देखो– द्रव्य एकान्त या निश्चयएकान्त मानने वाले को इस तरह मोक्षमार्ग की तरकीब न निकालना चाहिये। मोक्षमार्ग यों ही बनेगा कि सत्य श्रद्धा हो—मैं आत्मा नित्यानित्यात्मक हूँ, द्रव्यपर्यायात्मक हूँ। द्रव्य बिना पर्याय नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं, इतने पर भी क्षणिक पर्याय का आश्रय लेकर उसका निश्चय नहीं हो सकता। इसलिए पर्याय का आश्रय छोड़कर जो एक निज ध्रुव द्रव्य स्वभाव है उसका आश्रय करना।

धर्मपालन और उसका तात्कालिक फल – देखिये धर्मपालन के लिये लोग बाहर में कितना ही आश्रय बनाया करते हैं। इसका सहारा लूँ, अमुक मदद देगा, अमुक सुख देगा। ऐसा सहारा लिए फिरते हैं, और कदाचित् धर्मपालन की भी बात मन में आये तो भी जब तक आत्मस्वभाव का अनुभव नहीं होता तब तक किन्हीं बातों में धर्म का स्वरूप मानकर क्रियाएँ करते रहते हैं। यद्यपि तो कोई जो कुछ कर रहा है धर्म के नाम पर उतना भी छोड़ दें तो करेंगे क्या ? करना चाहिये, आइये, पूजा करो,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामायिक करो, स्वाध्याय करो, दान करो, जो जो भी कर्त्तव्य हैं वे सब करना चाहिये। उतना भी छोड़ दें तो फिर तीर्थ प्रवृत्ति कैसे चलेगी ? जो पुरुष बड़ी-बड़ी जानकारी बनाना चाहते वे भी इसी काम को पहले कर तो रहे थे जिन कामों को हम अज्ञानियों का काम कहते हैं धर्म के मामले में, उन कामों को ज्ञानियों ने भी किया था। वे भी उस व्यवहार में थे लेकिन जैसे जैसे परिचय बढ़ता गया, ऊपर परिचय करते गये वैसे ही वैसे वे व्यवहार से हटकर एक निश्चय गुप्त आत्मस्वभाव में मग्न हुए। तो ठीक है, जो भाई जो कुछ कर रहे हैं वह भी एक परम्परा की बात है, लेकिन साक्षात् धर्म-पालन जिससे तत्काल शान्ति मिले वही तो धर्मपालन कहलाता है। धर्मपालन अब करे और शान्ति कुछ देर बाद मिले, ऐसा नहीं होता। जो लोग पूजा करते हुये भी यह शंका रखते हैं कि मैं इतने दिनों से पूजा करता हूँ, मेरे को तो कोई तरक्की हुई नहीं। तो भाई उसने धर्म किया ही नहीं। धर्म के नाम पर जो कुछ कर रहे उसका नितान्त विरोध नहीं कर रहे, वह तो एक व्यवहार का रूप है, मगर धर्म की बात समझ में आये जिसको उसको यह शंका नहो हो सकती कि मैं धर्म तो कर रहा हूँ और उसका कोई फायदा नहीं होता। जो पुरुष धर्म करे उसका फायदा उसी समय उसको मिल जाता है, और संस्कार ऐसा बनता कि आगे भी लाभ पायेगा। धर्म का फल क्या है ? शान्ति, अनाकुलता, सत्य आनन्द आदि। तो यह फल कैसे मिलता ? धर्म करे तो मिलेगा। धर्म करने का अर्थ क्या है कि आत्मा का जो सहज अपने ही सत्त्व के कारण जो स्वभाव है उस रूप अपने को मान लो और उस रूप अपने को मग्न करो, आचरण करो, देखो कैसे शान्ति नहीं मिलती ? धर्म का फल धर्म में मिलना अनिवार्य है। धर्म करें और फल न मिले, ऐसा हो नहीं सकता। मगर धर्म तो कर नहीं रहे और धर्म का भ्रम कर रहे और उस समय धर्म का फल शान्ति चाहते तो नहीं हो सकता। तो धर्मपालन के लिए जहाँ इतना समय लगाया जा रहा, इतना श्रम किया जा रहा वहाँ यदि यह विवेक जगे कि इसमें से आधा समय कम कर दें और आधा समय धर्म की बात समझने में लगायें, उस धर्म की बात की समझ का प्रयोग करें तो यह बहुत लाभदायक बात होगी।

अन्तस्तत्त्व के मनन में श्रेयोमार्ग का लाभ भैया ! लोग अनेक कामों में तो घण्टों समय लगाते हैं मगर तात्त्विक बात को सीखने में उनकी रुचि ही नहीं, एक मिनट भी समय नहीं लगा सकते, तो यह उनकी भूल है। धर्म करना है तो धर्म की बात का निर्णय तो करना चाहिये। धर्म किसका नाम है ? और धर्मपालन कहते किसे हैं ? जितनी भी बाह्य क्रियायें हैं ये साक्षात् धर्म नहीं हैं। और, इसीलिये कह दो, धर्म नहीं है। ये क्रियाकाण्ड तो साक्षात् धर्म की दृष्टि बनाने के लिये पात्रता बनने के साधन हैं, इतना इनका प्रयोजन है। जैसे मान लो बाह्य व्रत, तप, संयम में न चलें, अव्रत, असंयम में बह जायें तो इस ध्रुव आत्मस्वभाव की चिन्तना और दृष्टियों के लिये उसका उपयोग ही न बनेगा। एकदम दूर भटक गये। तो इस उपयोग को संयत बनाने के लिये बाहरी पदार्थों से उपयोग को हटाना चाहिये। ये व्रत संयम आदिक साधक बनते हैं। ये उपचरित साधन हैं, इनको वास्तविक साधन भी नहीं कह सकते। वास्तविक साधन तो है कर्म का क्षय, उपशम, क्षयोपशम। मोक्षमार्ग में बढ़ने के लिये वास्तविक साधन तो कर्मों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है और उपादान साधन यह योग्य स्वयं जीव है और उपचरित साधन व्रत तप, संयम आदिक हैं। उपचरित है ऐसा सोचकर ऐसी दृष्टि न बनाना कि इसकी जरूरत क्या ? यह तो मिथ्या हैं। उपचरित होने पर भी यह तो बतलाओ कि अगर अटपट होते ये तो एक स्वरूप कैसे बन पाते कि तप करो, व्रत करो, संयम करो। यदि, उपचरित

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधन अटपट होता तो विषयभोग साधन को भी कहो मोक्षमार्ग का उपचरित साधन बन जाये, क्यों नहीं बनते ? अन्य विषयप्रवृत्ति विषय पाप आदिक क्यों नहीं मोक्षमार्ग के साधन बताये ? और ये तप, व्रत, गुप्ति, समिति, संयम वगैरह क्यों बताये गये ? कुछ सम्बन्ध तो है ना ? उपचरित के मायने ऐसा मिथ्या नहीं कि जिसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। उपचरित का अर्थ यह है कि जिस रूप में बताया जा रहा है उस ही रूप मानकर रहे तो वह उपचरित चीज है। जैसे कहा घी का घड़ा तो घी का घड़ा कोई ऐसा मान लें जैसे कि मानते यह चाँदी का घड़ा है, यह सोने का घड़ा है, यह ताँबे का घड़ा है, यह लोहे का घड़ा है, यह मिट्टी का घड़ा है यों ही मानें और यह घी का घड़ा है, इस तरह कोई माने तो यह मिथ्या है। लेकिन, उसे घी का ही घड़ा क्यों कहा गया ? और किसी को क्यों नहीं कहते ? उसे तेल का घड़ा अथवा पानी का घड़ा क्यों नहीं कहते ? तो उसमें सम्बन्ध है कुछ। उसमें घी रखा है इस कारण से उसे घी का घड़ा कहा जा रहा। तो उपचरित भी अटपट नहीं होता। उपचरित में भी कोई सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध को समझकर उपचार की बात बोलें तो वह मिथ्या नहीं, पर जो उस सम्बन्ध को न जानकर सीधा ही उपचार की बात को सत्य समझे तो वह मिथ्या है। ऐसे ही तप, धर्म, व्रत, संयम, गुप्ति, समिति, पूजा, स्वाध्याय ये सब धर्ममार्ग के साधन हैं। ऐसा कहने पर कोई सीधा यह ही समझ ले कि ऐसे हाथ चलें, ऐसे सामायिक करें, ये मोक्ष के कारण हैं, तो ये मिथ्या हैं। उसमें कोई सम्बन्ध माने कि ऐसी क्रिया, ऐसी चेष्टा, ऐसी वृत्ति करने से आत्मा के उपयोग को एक ऐसी पात्रता मिलती है कि उस आत्मस्वभाव की दृष्टि करने में देर नहीं लग सकती। इस सम्बन्ध से ये व्रत, तप, संयम मोक्षमार्ग के साधन हैं, यह बात सत्य हो गई है। तो जहाँ साधन से तत्त्व का परिचय कराया जाता हो वहाँ सर्वप्रकार का निर्णय करना होगा। उपादान साधन, वास्तविक निमित्त साधन और उपचरित साधन और इन सब प्रकार के साधनों से तत्त्व का परिचय होगा। ऐसा इस निर्देश स्वामित्व साधना सूत्र में जो तीसरा अनुयोग है उसके कहने का प्रयोजन है। और दार्शनिक विधि से उस साधन को सिद्ध करने की अभी हैरानी सी चल रही है।

भावाभावमात्र दिखाकर कार्य कारण सम्बन्ध के उच्छेद की चर्चा—पदार्थ की सही जानकारी करना आत्महित के हित के लिये आवश्यक है, क्योंकि सही जानकारी हो तो ही मोह दूर हो सकता है और मोह ही सारा दुःख है। मोह दूर हुआ कि अशान्ति दूर हुई। कर्म भी कटे और प्रभुता भी मिलेगी। तो सच्ची जानकारी किस तरह होती उसका प्रसंग यह चल रहा है। पदार्थ का स्वरूप जानें। वह किसका स्वामी है। इसका स्वामी कौन है यह जानें ? और वह वस्तु बनती किन साधनों से है, यह भी जानें। तो साधन के विषय में चर्चा चल रही है। क्षणिकवादी यह कहते कि साधन कोई चीज ही नहीं है। साधन मायने कारण। जब प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है तो उसमें कारण की क्या जरूरत ? किसी एक के कारण से दूसरे पदार्थ की सत्ता नहीं हुआ करती। तो जब सभी पदार्थ स्वतन्त्र हैं तो कार्य कारण भाव उनमें नहीं बनता। और जब कार्य कारण भाव नहीं है तो साधन भी कोई चीज न रहा। यदि कोई सम्बन्धवादी यह कहे कि यह तो देखा जाता कि इस पदार्थ के होने पर यह पदार्थ हुआ और इसके न होने पर यह न हुआ, यह तो देखा ही जाता है। जैसे अग्नि के होने पर धूम हुआ और अग्नि के न होने पर धूम न हुआ तो इस ही का नाम तो कारण कार्य भाव है। यदि कोई यह समाधान दे तो शंकाकार कह रहा कि इसमें कार्य कारण भाव नहीं हुआ किन्तु भाव और अभाव हुआ ? यहाँ सिर्फ यह जाना गया कि इसके होने पर यह हुआ, इसके न होने पर न हुआ उसका भावा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव ही तो बना, पर कारण कार्य भाव न बना। बात कुछ ऐसी लग रही है कि कुछ हठ है इसमें। अरे इसी का नाम तो कारण कार्य भाव है। अग्नि के होने पर धुआँ हुआ, अग्नि के न होने धुआँ न हुआ, यह विशेषण की तरह हुआ। और इससे समझा गया कारण कार्य भाव तो यह विशेष्य बन गया। जैसे छोटे छोटे शब्द विशेषण विशेष्य बनते इसी तरह वाक्य भी विशेषण विशेष्य बन जाता। तो विशेषण विशेष्य बनने से भेद पड़ गया। भेद अभेद तो विशेषण हुआ, कारण कार्य भाव विशेष्य हुआ। तो कारण कार्य भाव की सिद्धि हो गयी ना, तो इस पर शंकाकार कहता है कि – नहीं, बात एक ही है। यह तो शब्द का नियोग है कि विशेषण विशेष्य कह डाला। बात एक ही है अच्छा, अब और बढ़कर देखिये ऋजुसूत्रनय की दृष्टि में भी विशेषण विशेष्य नहीं बनता। तो यहाँ ये क्षणिकवादी कह रहे हैं कि विशेषण विशेष्य कोई चीज नहीं। जैसे बोलते हैं ना, नीला कमल, काला कौवा, विशेषण विशेष्य का इसी तरह प्रयोग होता है, पर ऋजुसूत्रनय कहता है कि काला कौवा कहना गलत है। क्यों गलत है कि जितना जो कुछ काला हो वह तो कहलाता हो कौवा और जितना वह सब कौवा है वह होवे पूरा काला तब तो तुम कहो कि कौवा काला है, पर ऐसा तो है ही नहीं। दुनिया में जितनी काली चीजें हैं क्या वे सब कौवा हैं ? और, कौवा भी जितना है क्या वह पूरा काला है ? अरे उसका खून लाल है, हड्डी सफेद है। ऊपर के रंग में भी कहीं काला है तो कहीं भूरा (कम काला) है। तो यह विशेषण विशेष्य ठीक नहीं है। कोई भी विशेषण विशेष्य नहीं है। इसी तरह यहाँ भी कह रहे कि अमुक चीज के होने पर होना, उसके न होने पर न होना, यह एक अलग बात है। और कार्य कारण भाव कहना अलग बात है, ऐसा भाव ठीक नहीं है। शंकाकार कह रहा है कि साधन सिद्ध नहीं हो सकता। साधन नाम की कोई वस्तु नहीं। जब साधन ही सिद्ध नहीं तो निर्देश, स्वामित्व, साधन अधि-करण आदिक सूत्र कहना गलत हो गया। साधन कोई चीज ही नहीं और न उसके द्वारा परिचय होता है।

भावाभावरूप विशेषणविशेष्य से कार्यकारण सम्बन्ध के स्वरूप की विलक्षणता – अब कुछ समाधान में तुल्यता की बात देखिये शंकाकारण अकारण अकार्य तो मानता है। तो जो बात कार्यकारण के निषे में कहता है शकाकार वह ही बात अकारण अकार्य में लगायें। उस पदार्थ के होने पर न होना और उसके न होने पर होना, ऐसी सीमा बताये उसका नाम है अकार्य अकारण। जैसे पानी के होने पर आग का न होना, पानी के न होने पर आग का होना, यह बात पायी जाती है तो उनमें अकारण अकार्य सिद्ध हैं। सो यह अकारण अकार्य भी विशेषण विशेष्य बन गया अकारण अकार्य भी न रहा। यदि विशेषण विशेष्य से कारण कार्य को भिन्न न मानें तो अकार्य अकारण भी सिद्ध नहीं होता। जैसे कार्य कारण के लिये शब्द नियोग की बात कही थी ऐसे ही अकार्य अकारण के लिये भी शब्द नियोगमात्र का भेद रहा, वास्तव में अकार्य अकारण कुछ न रहा। यह उनकी विडम्बना की बात रहेगी। तो शंकाकार यहाँ यह कह रहा था कि यह तो सब भाव अभाव की बात है। इसके अतिरिक्त कार्य कारण कुछ नहीं है। कार्य कारण शब्द यों बोलना पड़ता है व्यवहार में कि बहुत लम्बा चौड़ा न कहना पड़े और थोड़े शब्दों में निपट जाये। जैसे कह दिया कि धुआँ अग्नि का कार्य है। तो इतना कह देने से बहुत बड़ी परेशानी खत्म हो जाती है। नहीं तो यह कहना पड़ता कि अग्नि के होने पर धुआँ होता, अग्नि के न होने पर धुआँ नहीं होता, ऐसी भाव अभाव की बात है यह धुआँ। इतनी लम्बी चौड़ी बात न कहनी पड़े इसलिये संकेत कर दिया कारण कार्य का। पर संकेत के कारण कार्यकारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध नहीं होता। जैसे एक संकेत बना दिया—गौ का संकेत क्या ? गले के नीचे झालर सी लटक रही, जिसे बोलते हैं सास्ना। तो कहीं उसमें कार्य कारण तो नहीं सिद्ध होता। एक गाय की पहिचान भर बनी। इसी तरह भाव अभाव की बात कहने से पहिचान बनती है, कारण कार्य नहीं बनता। तो यह ही दोष अकारण अकार्य में लग सकता। अकारण अकार्य कोई चीज नहीं, किन्तु होने पर न होना, न होने पर होना, इसका संकेतमात्र है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अवस्था का कारण अवश्य होता है। उपादान कारण है, निमित्त कारण है। कौन सी दशा ऐसी है जिसका साधन न हो। सिद्ध दशा भी होती मोक्ष जैसी। उस मोक्ष का निमित्त कारण है काल द्रव्य का परिणमन। उपादान कारण है स्वयं आमा। विकार में तो निमित्त भी स्पष्ट ही है। तो साधन के द्वारा वस्तु स्वरूप का परिचय होता है। यह इस सूत्र के तृतीय अनुयोग द्वारा बताया गया।

साधन साध्य में कारणकार्य सम्बन्ध की अबाधितता—यहाँ ऐसा भी तर्क न करना कि वस्तु में जो दो बात हैं एक साधन एक साध्य, एक कारण एक कार्य, उनमें रहता है कारण कार्य सम्बन्ध। रहता है सम्बन्ध तो यह बतलाओ कि उन दोनों से भिन्न है सम्बन्ध या अभिन्न ? अगर भिन्न है तो कार्य कारण कैसे बने ? यदि अभिन्न है तो कुछ सम्बन्ध ही न रहा। वे तो दो वस्तुएँ हो गईं। इस तरह साधन न बना। ऐसी तर्कणा तो अकार्य अकारण में भी की जा सकती है। बतलाओ वह सम्बन्ध इन दो पदार्थों से भिन्न है या अभिन्न ? भिन्न है तो असम्बन्ध न रहा, अभिन्न है तो असम्बन्ध न रहा। तो वास्तविकता यह है कि प्रति नयी पर्याय का साधन अवश्य है सम्यग्दर्शन का परिचय करें तो उसका साधन पहिचानो। आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष आदि किसी भी तत्त्व का परिचय करें तो साधन बताने से उसका सही परिचय होता है। आखिर यह अवस्था उत्पन्न किस तरह से होती ? इसी को बतलाता है यह साधन नाम का तृतीय अनुयोग। बात यह कही जा रही है कि दुनिया में जितनी चीजें हैं उन चीजों में परस्पर विरुद्ध व अविरुद्ध कार्य का हेतुपना चलता है लेकिन जो क्षणिकवादी हैं वे कहते हैं कि जब पदार्थ स्वतन्त्र है और क्षणवर्ती है, दूसरे समय कोई पदार्थ ठहरता नहीं तो उसमें साधन साध्य की क्या चीज है ? सभी पदार्थ अपने काल में अपने आप हो जाते हैं। जैसे कि आजकल के नये आध्यात्मिक जैन भी कहने लगे— जब जो होना है तब वह अपने आप अपने ही कारण से हो जाता है। उसमें दूसरा कुछ कारण नहीं है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। कोई भी पदार्थ सत् तौ स्वयं है मगर उसकी अवस्था अगर विकृत अवस्था है तो भी मात्र स्वयं के साधन से नहीं हो सकती। तो साधन प्रत्येक में है। सम्यक्त्व का भी साधन है। उपादान में तो अपने आपकी दृष्टि अन्तरंग निमित्त में ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम और बाह्य निमित्त में उपदेश, सत्संग, जिन बिम्ब दर्शन, वेदनानुभव आदिक सम्यक्त्व के साधन होते हैं। आश्रव बनता है तो उसका भी साधन है। साधन प्रत्येक तत्त्व के हैं। उन साधनों द्वारा तत्त्व का परिचय किया जाता है।

स्वभाव व्यवस्थित पदार्थों में भी कारण कार्य सम्बन्ध—अब पुनः यह ही क्षणिकवाद की एक शंका है कि पदार्थ है, अपने स्वरूप में है, परस्वरूप में नहीं है, तो अपने स्वरूप में रहना यह ही पदार्थ का धर्म है। रहते हैं सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप में। इसमें कार्य कारण भाव की बात क्या ? अकारण अकार्य भी कुछ नहीं। वास्तविक बात यह ही है कि सब पदार्थ हैं और अपने अपने स्वभाव में हैं। अब जो लोक में व्यवहार चल रहा है कि यह पदार्थ इसका कारण है, इसका कार्य है, इसका इसका कारण नहीं, इसका कार्य नहीं, यह सारा व्यवहार चलता है, कल्पना से गढ़ा जाता है, पदार्थों में

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी कोई आशंका करे तो इसी तरह यह भी कहा जा सकता कि यह इसका कारण नहीं, यह भी कल्पना है। तो वास्तविकता यह है कि जो भी पदार्थ उत्पन्न होता है, जिसकी जो परिणति बनती है उस परणति का कोई कारण जरूर है, इसी को कहते हैं साधन। अच्छा भाव बने उसका भी कारण है, बुरा भाव बने उसका भी कारण है, तब ही तो लोग कहते हैं कि बुरे काम के कारण मत जुटाओ, अच्छे काम के कारण जुटाओ, जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ बढ़ें, जिससे आत्मा में अशान्ति बढ़े ऐसे कोई साधन मत जुटाओ। और, जहाँ प्रभु का भजन होवे, प्रभु के गुणों का स्मरण होवे, सब जीवों में परस्पर मैत्री भाव बढ़े, खुद के आत्मा के स्वरूप की दृष्टि बने, ऐसे साधन जुटावें और ऐसा साधन बताओ क्या है? शास्त्राभ्यास और सत्संग। जो लोग सोचते हैं कि हमारे परिणाम ऊँचे नहीं बन पाते, पतन की ओर परिणाम जाते। क्या उपाय करूँ? तो यह ही तो उपाय है। जो परिणाम को शुद्ध करने के साधन हैं उनमें आइये। हाँ दृष्टि जरूर सही रहनी चाहिये। ये बाहरी पदार्थ, यह सत्संग, यह स्वाध्याय, यद्यपि यह सीधा मेरे में अच्छी बात उत्पन्न नहीं कर रहा। भला भाव तो मैं ही कर रहा हूँ, अपने ही परिणमन से, मगर ऐसे सत्संग में रहकर भाव भला बनता है। असत्संग में रहकर भाव खोटा होता है। तो सबके साधन हैं और साधन के द्वारा वस्तु का परिचय हुआ करता है। तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष, इनको साधन अनुयोग द्वारा करने के लिये साधन का परिचय कराया जा रहा है। निर्देश से परिचय कराया। उनका थोड़ा स्वरूप बता दिया। स्वामित्व से परिचय कराया। सम्यक्त्व का स्वामी कौन? चारों गति के जीव, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव। जानने योग्य जिनमें योग्यता हो। और सम्यग्दर्शन का साधन कौन? तो उसी साधन के बारे में प्रश्नोत्तर चल रहे हैं। साधन तो है ना। बाह्य-साधन भी है, अन्तरंग साधन भी है, उपादान साधन भी है। तो जो सम्यक्त्व के साधन हैं उन साधनों का साथ करना मुख्य यह कर्तव्य है। यद्यपि उन साधनों से बाह्य साधनों से सम्यक्त्व नहीं आता है मगर जैसे बरसात में अपनी छतरी भूल गए हों किसी दुकान पर और आगे चले गये हों। तो दूसरे की छतरी को देखकर ख्याल आता है कि ओह मैं छतरी भूल आया। आखिर पास में ही दूकान थी। वहाँ जाकर अपनी छतरी उठा लाता है। तो कहीं उस छतरी ने उसकी छतरी नहीं दिला दी, न स्मरण करा दिया, पर उसे देखकर स्मरण करने वाले ने खुद अपने आप में स्मरण किया। ऐसी ही इन सब साधनों की बात है। प्रभु पूजा करने से कहीं प्रभु धर्म नहीं दे देते। प्रभु तो अपने धर्म में ही हैं, पर प्रभु के गुणों का स्मरण करने से हमें अपने आपके गुण याद आते हैं और उन गुणों के स्वभाव की दृष्टि करना ही धर्म है। तो यों हमारे धर्म साधन में बाह्य साधन हुये प्रभु पूजा आदि। इसी तरह गृहस्थ और मुनि के जो छः छः आवश्यक कर्म बताये हैं वे साधन बनते हैं। तो साधन द्वारा हम शान्ति का उपाय बनायें और साधन से हम वस्तु का सही परिचय करें।

पर्याय का मूल साधन द्रव्य—संसार के संकटों से छूटने का उपाय इस मोक्ष शास्त्र में कहा गया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है, अर्थात् आत्मा का श्रद्धा न करना, आत्मा का ज्ञान करना और आत्मा में रमण करना संकटों से छूटने का उपाय है। तो सबसे पहले ज्ञान की बात है। सम्यग्दर्शन होने के लिये भी ज्ञान चाहिये। तो इसके पहले अध्याय में ज्ञान करने के उपाय का ही वर्णन है। ज्ञान करने का उपाय पहले तो निक्षेप बताया, फिर प्रमाण और नय बताया। अब इस सूत्र में कह रहे हैं कि निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन

http://sahjanandvarnishastra.org/

६ अनुयोगों से भी तत्त्व का परिचय होता है। जैसे सम्यग्दर्शन को समझना है तो सम्यग्दर्शन, प्रयोजनभूत तत्त्व का विश्वास यह तो हुआ निर्देश और इसके स्वामी हैं चारों गति के जीव, जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हों। यह हुई स्वामित्व की बात। और सम्यक्त्व का साधन है वास्तव में वही जीव जिस जीव में सम्यग्दर्शन हुआ है। और निमित्त साधन है ७ प्रकृतियों का उपशमादिक और बाह्य साधन हैं शास्त्राभ्यास, सत्संग, देव दर्शन आदिक। तो इस प्रकरण को सुनकर एक क्षणिकवादी बौद्ध यह शंका रख रहा है कि दुनिया में जितने पदार्थ हैं वे स्वयं हैं और अपने आप उत्पन्न होते हैं। कोई किसी को उत्पन्न नहीं करता। ऐसा इसका अभिमत है। कारण कि पर्याय तो क्षणिकवादी मानते नहीं। जो पर्याय है इतना ही उनका पूरा द्रव्य है। एक समय को द्रव्य होता है दूसरे समय नहीं रहता। तो सब द्रव्य ही द्रव्य रहे, वस्तु ही वस्तु रहे और वस्तु है सब स्वतन्त्र। अपने आप पैदा हुये तो उनमें साधन कैसे घटाओगे? कोई चीज किसी दूसरे के द्वारा उत्पन्न होती ही नहीं है। तो साधन कोई चीज नहीं है। कार्य कारण कोई चीज नहीं, ऐसा क्षणिकवादी अपना मंतव्य रखते हैं और कहते हैं कि इस सूत्र में से स्वामित्व भी निकाल दें, साधन भी निकालें, सब खत्म करें, एक निर्देश निर्देश ही रहने दें। यह सूत्र गलत है। उनको समझाने के लिये कह रहे हैं कि सूत्र का एक शब्द भी गलत नहीं है। कारण यह है कि यदि पर्यायमात्र द्रव्य माना जाये तो जो है ही नहीं वह हो कैसे गया? और एक शरीर में अटपट आत्मा क्यों नहीं बन जाता? संस्कार क्यों बना रहता है? और जगत में जितने पदार्थ है वे सब हैं और उनकी दशायें प्रति समय भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। तो प्रत्येक का स्वामी वही द्रव्य है, प्रत्येक का साधन वही द्रव्य है। अपने ही द्रव्य से अपनी पर्यायि प्रकट होती है। तो साधन हुआ स्वयं, साध्य हुई पर्याय।

अकारण अकार्य सम्बन्ध की तरह कारण कार्य सम्बन्ध की प्रतीति की अबाधितता - इस प्रसंग में बौद्धजन यह दलील रखते हैं कि कोई पुरुष कदाचित् अग्नि को देख ले तो कभी उसको यह ख्याल नहीं होता कि अग्नि कारण है, धुआँ कार्य है। अगर कारण कार्य इन पदार्थों में होता तो एक चीज दिखी केवल तो वहाँ भी कारण कार्य का ज्ञान करना चाहिये जब अग्नि और धूम दो दिखें तब लोग कहते हैं कि यह कारण है और धुआँ कार्य है। अगर कारण कार्य वस्तु में पड़ा होता तो अचानक कभी आग दिख जाये तो तुरन्त कारण कार्य का ख्याल आना चाहिये, पर एक चीज देखकर कारण कार्य का ख्याल नहीं आता। इससे ज्ञान होता है कि कारण कार्य सम्बन्ध कोई चीज नहीं है। अगर होता तो एक वस्तु में ज्ञात होना चाहिये था। जैसे कोई कहता है कि इसका मकान, अगर यह बात सच होती तो उसे देखकर कोई विदेशी आदमी को भी जान लेना चाहिये कि यह मकान अमुक साहब का है, पर ऐसा तो नहीं होता। वह तो केवल उस आदमी के ऊपरी ढाँचे को (शरीर को) देख पाता है। तो जो जिसका हो उसके देखने पर वस्तु भी दिख जानी चाहिये। अगर आदमी का मकान होवे तो आदमी को कोई देखे तो मकान भी उसे दिख जाना चाहिये। जैसे आदमी का रूप है तो आदमी को देखने पर रूप दिख जाता कि वह आदमी का रूप है. यह आदमी का आकार है। तो यहाँ यह बात कह रहा है शंकाकार कि जैसे आदमी का मकान होता तो आदमी के देखते ही मकान भी दिखना चाहिये ऐसे ही अग्नि कारण होवे तो अग्नि के देखते ही कार्य का भी ख्याल आना चाहिए, पर कोई पुरुष केवल आग को देख रहा तो वह धुवें का ख्याल भी नहीं करता, कारण कार्य का ध्यान भी नहीं बनाता। अथवा केवल धुआँ को देखे तो वह कारण कार्य का ध्यान भी नहीं बनाता। बनावे कोई तो वह बात अलग है वह दो का ख्याल करके बनाता है। मगर कारण कार्य होता तो सबको ख्याल आना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिये। किसी ने ख्याल किया, किसी ने न किया। तो इससे नियम तो न बना, अतः कारण कोई चीज नहीं, ऐसा शंकाकार कहता है। यदि कोई यह उत्तर देवे कि जो विशेष ज्ञानी पुरुष है वह एक आग को देखकर ही कारण कार्य का भी ज्ञान करता है, धुआँ को देखकर ही कारण कार्य को भी ज्ञात करता है। तो जिसके अतिशय ज्ञान है, समझदार हैं उनके कारण कार्य का ज्ञान होता है। तो इसी तरह यह भी कह सकते कि अतिशय ज्ञानी के अकारण अकार्य का भी ज्ञान होता है सबके तो नहीं। इस तरह तो अकारण अकार्य भी कोई चीज है। जैसे कोई कहे कि दीपक का काम पुस्तक नहीं, बिजली का काम पुस्तक नहीं, क्योंकि बिजली के होने पर भी पुस्तक नहीं और बिजली के न होने पर भी पुस्तक है, तो अकारण अकार्य रहा, ऐसे ही कारण कार्य का भी ध्यान होता है। अग्नि के होने पर धूम होता, अग्नि के न होने पर धुआँ नहीं है, कारण कार्य बन गया। तो साधन कोई चीज है। उस साधन के द्वारा साध्य का ज्ञान किया जाता है।

साधन की उपयोगिता व व्यावहारिकता—साधन का परिचय बहुत उपयोगी है। चारित्र पालो उसका भी साधन, धर्म पालन करे उसका भी साधन। प्रभु पूजा करे उसका भी साधन और वास्तव में तो उसका वही साधन होता है। जैसे हमारा भाव खोटा बने तो उसके साधन हम ही हैं। हमारा भाव अच्छा हो तो उसका साधन हम ही हैं। बाह्य पदार्थ तो निमित्त मात्र हैं। वास्तविक साधन तो उपादान है। एक द्रव्य में कारण कार्य को देखना जैसे मिट्टी कारण है घड़ा कार्य है यों अपने में भी देखो—मेरा जो कुछ भविष्य होगा उसका कारण मैं ही हूँ, दूसरा नहीं। हम दुर्गति में जाएँ तो उसके कारण भी हम ही हैं स्त्री पुत्रादिक नहीं। हम मोक्ष जाएँ तो उसके साधन हम ही हैं, आचार्य सन्तजन नहीं। जिसका काम है उसका साधन वही होता है। एक द्रव्य के साथ पर्याय की समीपता है। उस ही द्रव्य में पर्याय हुई इसलिए उसका वही साधन है। कारण और कार्य में समीपता हुआ करती है। तो यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता कि बताओ अच्छा, एक घड़ा बनाने में चका, डण्डा, कुम्हार आदिक बहुत से कारण पड़ते हैं। तो यह तो नियम न रहा कि पर्याय का खुद द्रव्य कारण है। ये तो बाहर के पदार्थ भी कारण हो गये। तो कहते हैं कि हों। उनके साथ भी समीपता है अर्थात् काल की प्रत्यासत्ति समीपता याने जिसके बाद जो बन जाये उसका कारण वह। जैसे चक्रदण्ड इस प्रकार चले उसके बाद ही घड़ा बन जाये तो वह भी घड़े के कारण है, जिसके साथ किसी न किसी प्रकार की समीपता हो वह उसका कारण है। तो सूत्र में जो साधन शब्द दिया है वह बिल्कुल सही उपयुक्त होता है। और साधन से वस्तु का परिचय होता है। तो साधन अन्दर में भी है, बाह्य में भी है। भीतर के साधन को उपादान कहते हैं, बाहर के साधन को निमित्त कहते हैं। अब कारण कार्य का अर्थ क्या ? जिसके होने पर जो हो, जिसके न होने पर जो न हो उसको कहते हैं कारण कार्य। यह लक्षण सब जगह घटेगा। तो कोई शंकाकार यह कहता कि हमने किसी एक पदार्थ को देखा, उसको देखकर दो ज्ञान तो नहीं बनते कि इसके होने पर यह होता है, इसके न होने पर यह नहीं होता। तो जब इस भाव अभाव का तद्भाव भावी का निश्चय नहीं होता एक पदार्थ को देखकर तो कारण कार्य कुछ नहीं है। तो इसका उत्तर यह है कि जैसे एक पदार्थ को देखकर तद्भाव भावी का ज्ञान नहीं होता याने इसके होने पर होना, इसके न होने पर न होना, इसका निर्णय नहीं बनता, ऐसे ही अकारण अकार्य का भी ज्ञान नहीं होता। जिसके होने पर न हो और जिसके न होने पर हो, ऐसा भी ज्ञान नहीं होता एक को देखकर। यहाँ शंकाकार यह कह रहा है कि अगर वस्तु में कारणत्व धर्म हो तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तु को देखते ही ज्ञान हो जाना चाहिये कि यह इसका कारण है। शंका ही तो है। समाधान उसका यह है कि सारी दुनिया को कारण कार्य का अनुभव चलता है। व्यवहार चलता है उसका निषेध कैसे किया जा सकता है?

साधन द्वारा तत्त्वों के संक्षिप्त परिचय का दिग्दर्शन—साधन से तत्त्वों का परिचय होता है। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वों का साधन से परिचय बतावें। जीव का साधन क्या है याने जीव किसी कारण से बना है तो कोई इसका कारण नहीं। जीव अपने स्वरूप के कारण से बना, अजीव किस कारण से बना? वह भी अपने स्वरूप से बना। आश्रव किस साधन से बना। तो आश्रव होता है दो जगह। जीव में और कर्म में। जीव में रागादिक हो गये तो वह जीव का आश्रव और कर्म में कर्मपना आया तो वह कर्म का आश्रव। तो बताओ साधन तो खुद में खुद है। जीव में रागादिक आये तो उसका उपादान साधन तो यह अयोग्य जीव ही है पर निमित्त साधन मोह कर्मविपाक है। ऐसे ही कर्मों में जो कर्मपना आया उसका उपादान साधन तो वही कर्म वर्गणा है, पर निमित्त साधन जीव का रागादिक भाव है। तो इस तरह साधन द्वारा आश्रव का परिचय करें, ऐसे ही बंध का परिचय करें। सम्वर में दो जगह दृष्टि देना है जीव में रागादिक विकार न आ सकें यह तो है जीव का सम्वर और कर्म में कर्मपना न आ सकना यह है कर्म का सम्वर। तो उपादान साधन तो खुद का खुद ही है। निमित्त साधन कर्म के सम्वर में जीव के शुद्ध भाव साधन हैं और जीव के विकार न होने में कर्म का क्षीण होना साधन है। तो सा धनसे जब तत्त्व का परिचय होता है तो अपना कल्याण करने के लिये साधन में यह जीव लग सकता है, तो साधन से सबका परिचय बनावें। यह ही बात निर्जरा में है। कर्म निर्जरा होती है तो कर्म साधन के उपादान से और निमित्त कारण है जीव का शुद्ध भाव। शुद्ध भाव हो तो कर्म निर्जरा हो और जीव में शुद्ध भाव होता है इसका उपादान साधन तो वही जीव है और निमित्त साधन है कर्म का दूर होना। यह ही बात मोक्ष में है। मोक्ष का साधन तो जीव का जोव ही है और निमित्त है उन कर्मों का क्षय। और, कर्मों के क्षय होने में उपादान तो वही है और निमित्त है जीव के शुद्ध भाव। तो साधन से तत्त्व का परिचय करना। संसार के जीव दुःखी होते जाते और उस दुःख में साधन दूसरे को मानते। उससे और दुःख बढ़ते जाते। मेरे को कोई भी नुकसान हुआ तो देखो अमुक स्त्री ने, पुत्र ने, भाई ने हमें दुःखी किया, ऐसा समझकर उनके प्रति भीतर में रोष रहा और अगर यह जान जाये कि मेरे सुख दुःख का साधन मैं ही हूँ। दूसरा कोई नहीं है तो उसे दूसरों पर रोष न आयेगा और खुद में भी उसके द्वारा समाधान रहेगा। तो वस्तु तत्त्व का यथार्थ परिचय होने से जीव का कल्याण है। तो वही परिचय एक साधन द्वारा किया जा रहा है।

साधन के सदुपयोग में विवेक—लोग अपना कार्य करने के लिये साधन तो बनाते हैं मगर खोटा कार्य करने का साधन बनाते हैं। जैसे रागद्वेष का साधन बनाया मोह, आकुलता का साधन बनाया। बाहरी वस्तु में प्रेम करके कोई शान्ति पा सका क्या आज तक? एक भी उदाहरण नहीं है कि जो बाह्य समागम में सदा रहा हो और उस समागम से उसे शान्ति मिली हो। कभी जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के सामने कोई पहुंचे तो उसको शान्ति प्रतिमा से नहीं आयी, उसको शान्ति आयी है अपने विचार, अपने ध्यान और अपने चिन्तन से। भगवान के गुणों का जो चिन्तन है, भगवान के प्रति जो महती भक्ति है, वह भक्ति, वह चिन्तन, वह स्मरण पर्याय क्या भगवान का है या भक्त का है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भगवान तो अपने आपके ज्ञानानन्द में मग्न रहते हैं, उनसे कोई चीज निकलकर बाहर नहीं जाती। हम ही प्रभु का ध्यान बनाकर अपने में शान्ति पाते। अगर प्रतिमा देखने से शान्ति आती हो तो कोई भी देखे--क्या शान्ति आ जाती है ? कोई चोर भी देखता है चुराने की दृष्टि से तो उसे तत्काल शान्ति आ जानी चाहिए, क्योंकि प्रतिमा को तो देखा उसने, इसी तरह जो विषय सुख हैं उनके साधन जुटने पर इस जीव को सुख तो होगा पर शान्ति न होगी। भूख मिटने से शान्ति नहीं होती, किन्तु सुख होता है। प्यास बुझाने से शान्ति नहीं होती किन्तु सुख होता है। सुख और शान्ति में विकार और अविकार का अन्तर है। सुख तो है विकार और शान्ति है निर्विकार परिणाम। सुख और शान्ति में क्या अन्तर है। यह शब्द से मालूम पड़ेगा। सुख का अर्थ है –सु मायने सुहावना ख मायने इन्द्रिय, जो इन्द्रिय को सुहावना लगे वह सुख है। भगवान के सुख रंच नहीं है, उनके तो अनन्त आनन्द है, अनन्त शान्ति है। शब्द दृष्टि से अनन्त सुख न कहना चाहिए, पर शास्त्र में तो कहा है – तो शब्दानुसार दृष्टि देकर उतर मत लें। शास्त्र में तो कहा है, ठीक है। किसको समझाने के लिये कहा ? संसारी जीवों को समझाने के लिये कहा है। और, संसारी जीवों को सुख प्यारा है। जो इन्द्रियों को सुहावना लगे सो प्यारा है। सो उनको समझाने के लिये सुख शब्द दिया है कि जितना सुख तुम पाते हो उससे अनन्त गुना सुख भगवान के हैं। अगर सुख की जो जाति है उस पर दृष्टि दें तो उस शब्द से तो भगवान की निन्दा की। याने जो सुख है विकार है, सांसारिक चीज है यह चीज उनमें हमसे अनन्त गुनी है क्या ? जो त्रुटियाँ हममें हैं उससे अनन्त गुनी त्रुटियाँ हैं भगवान में, क्योंकि सुख तो विकार है। तो अगर अनन्त आनन्द कहा जाता तो उसमें संसारी लोग ज्यादह दिलचस्पी न लेते। जो इन जीवों को अनुभव में आ रहा है उससे ही मिल जुलकर बात कहें तो इसका उत्साह जगता है। यों सुख शब्द से कहा है। वास्तव में सुख तो विकार है, क्षोभ है, आकुलता है।

शुभ अशुभ सभी पर्यायों का वास्तविक साधन—बहुत गहरी दृष्टि से देखें तो खाने पीने का सुख लूटते हुए में इसके विकल्प चलते हैं या निर्विकल्प अवस्था होती है ? वहाँ तो विकल्प ही चलते हैं। शान्ति में निर्विकल्प अवस्था होती है। प्यास बुझाने पर जा उसने चैन माना, उस चैन में तो वह सुख के मौज के विकल्प बढ़ा रहा है। वहाँ निर्विकल्प दशा नहीं बनती। लोग उस सुख को शान्ति कह देते हैं, शान्ति को सुख कह देते हैं। ज्यादह उसमें ध्यान नहीं देते इसलिये कुछ शब्दों से बोलकर अपनी विज्ञता समझ लेते हैं। जब वास्तविक अर्थ की दृष्टि से देखें तो अन्तर विदित होना है। जैसे देखने की कई धातुयें होती हैं इंगलिश में सी (See) धातु का भी अर्थ देखना है, लुक (Look) धातु का भी अर्थ देखना है, परसीव (Pereive) धातु का अर्थ भी देखना है, किन्तु बताओ इनमें अन्तर है कि नहीं ? किसी जगह किसी धातु को तो नहीं लगा देते हैं। हिन्दी में तकना, देखना, इन दोनों का देखना अर्थ है, मगर जो देखना है वह तकना नहीं, जो तकना है वह देखना नहीं। तकना तो होता है थोड़े से क्षेत्र को संयमी बनाकर एक निगाह से देखने को, जैसे बच्चे लोग जब खेलते हैं तो कोई भींट वगैरह में थोड़ा सा सूराख हुआ जिसमें आर पार दिखता है, उससे देखते हैं तो वह तकना कहा जाता है, और प्रकट चौड़ा दिखने को देखना कहते हैं। तो इसी तरह शब्दों के अनुसार अर्थ में भेद रहता है। शान्ति में तो निराकुलता है, निर्विकल्पता है और सुख में आकुलता है और विकल्प होता है। अब आकुलता ही उसे प्रिय हो रही है तो वे आकुलता नहीं समझ पाते।

अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य पर्याय की असम्भवता—देखो भैया ! जो वास्तविक शान्ति है वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसी बाह्य पदार्थ से नहीं, किन्तु स्वयं में से होती है, और शान्ति की ही बात नहीं, विकारी सुख भी स्वयं में से होता है, बाह्य पदार्थ से नहीं होता। पानी से सुख नहीं होता, खुद का ज्ञान बना कि अब हम कृतार्थ हैं। अब मेरे को वेदना नहीं है। इस प्रकार का जो भाव बना उससे सुख मिला। यद्यपि यह भाव बना पानी पीने पर, मगर कोई पानी पीकर भाव बना सकता है कोई पानी पिये बिना भी ऐसे भाव बना सकता था। योगीजन जो महीनों ध्यान करते हैं, आखिर शरीर तो शरीर ही है। क्या क्षुधा तृषा वहाँ नहीं होती, मगर उनका इतना बड़ा ज्ञानबल है कि अपने ही ज्ञान जल से वे अपने को तृप्त रखते हैं। तो सुख शान्ति वहाँ भी मिलती है। तो वास्तव में अपने सुख दुःखादिक अवस्थाओं का साधन खुद ही है। तो साधन की बात चल रही है। निश्चय से खुद की अवस्था के लिये खुद ही साधन होता है निश्चय से। भोजन से सुख नहीं होता, किन्तु अपने ज्ञान विकल्प से सुख होता है। तो इसमें यह जिज्ञासा हो सकती है कि यदि ज्ञान विकल्प से ही सुख होता, भोजन से सुख नहीं होता तो फिर मुनि भोजन करते ही क्यों हैं ? तो पहला उत्तर तो यह है कि यदि सुख के लिये मुनि भोजन करता है तो उसके मुनिपना न रहा। वह तो संयम का साधन जान रहा है शरीर को और शरीर की स्थिति रहती है शरीर के साधन से तो वह तो एक संयम के अनुराग से संयम के बाह्य साधनभूत शरीर को रखने की सोचता है। एक बात तो यह है कि वह संयम के साधनभूत शरीर की रक्षा के लिये भोजन लेता है। दूसरी बात यह है कि उनके क्षुधा लगी और उसकी वेदना सहन न हुई तो उस वेदना को दूर करने के लिये आहार करते हैं। तो यहाँ यह जानना कि आहार करने से तो पेट भरा, सुख नहीं मिला। सुख मिला तो ज्ञान विकल्प से मिला। उस हालत में भी ज्ञान विकल्प से ही सुख मिला, पेट भरने से नहीं मिला। यद्यपि ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि पेट भरे तो उस तरह का ज्ञान विकल्प करे, मगर ज्ञान विकल्प होता है चेतन में और भोजन जाता है चेतन में। भोजन का अमूर्त आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। तो भोजन से काम बना पुद्गल का और सुख मिला तो ज्ञान विकल्प से। इन दोनों में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, पर उपादान सम्बन्ध नहीं है। तो बाह्य निमित्त भी साधन है, पर वह है व्यवहार साधन। और उपादान साधन है वास्तविक साधन।

अन्तरङ्ग व वहिरङ्ग साधनों से तत्त्व की परिचेयता - साधन के द्वारा तत्त्व का परिचय करते हैं तो दोनों दृष्टियों से करते हैं, पर उनमें से उपादान दृष्टि से जो उत्तर होता है वह तो है इसका अन्तरंग साधन वाला उत्तर और बाहरी दूसरे पदार्थ से जो उत्तर किया जाता है वह कहलाता है व्यावहारिक उत्तर। जैसे कोई पूछे कि घड़ी का स्वामी कौन ? तो घड़ी को देखकर सभी को जो ज्ञान होवे वही उसका स्वामी है। घड़ी का स्वामी उपादान दृष्टि से घड़ी का ही स्कन्ध है। और, यह उपचार से उत्तर है कि इस घड़ी का स्वामी अमुक पुरुष है। तो तीन चीजें हुआ करती हैं – (१) निश्चय (२) व्यवहार और (३) उपचार। निश्चय तो एक द्रव्य की बात को बताता है। व्यवहार निमित्त नैमित्तिक की घटना को बताता है और उपचार एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में कर्ता कर्म स्वस्वामी सम्बन्ध बताता है। तो इन तीनों में उपचार तो मिथ्या है, पर निश्चय और व्यवहार ये दोनों मिथ्या नहीं हैं। जैसे जब राग हुआ जीव में तो कहेंगे कि जीव में जीव से ही राग हुआ। यह हुआ निश्चय से समाधान। और कर्मोदय का निमित्त पाकर जीव में राग हुआ यह व्यवहार का समाधान है। ये क्या हमारी स्थितियाँ नहीं, पर यह कहा जाये कि कर्म ने जीव को रागी बनाया तो यह उपचार है, यह मिथ्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहलाया। तो साधन से जब वस्तु का परिचय करें तो उपादान से भी उत्तर दें और निमित्त से भी उत्तर दें। यों साधन से तत्त्व का परिचय होता है।

सप्तम सूत्र में छह अनुयोगों द्वारा तत्त्व परिचय करने की पद्धति का समावेश—जैसे कोई लोग कहते हैं कि राम रावण के युद्ध के समय बानर सेना ने समुद्र को लाँघ दिया था और वे लंका में पहुँच गये थे। तो बन्दरों ने समुद्र को लाँघ तो दिया उनके कहे अनुसार, पर समुद्र में क्या भरा है इसको क्या वे बन्दर जान सके ? इसे बन्दर न पहिचान सके। ऐसे ही मोक्ष शास्त्र के सूत्र का पाठ कहीं रोज—कहीं अष्टमी चतुर्दशी को, कहीं कभी होता रहा है, शुरू से अन्त तक पढ़ जाते हैं, वह पढ़ना मानो बन्दरों के समुद्र लाँघने की तरह है। सम्यक् से छलांग मारा और साध्य तक पहुँच गये, पर सूत्र जी में क्या रत्न भरा है यह तो तब ही समझा जायेगा जब उसका अर्थ जानें। उसके शब्द में क्या क्या मर्म भरा है उसे जानें। तो मर्म जानना बहुत आवश्यक है श्रद्धा से सूत्रजी का पाठ पढ़ने से कषाय यदि मन्द हुई तो पुण्य का बंध करता है. परन्तु तत्त्व का ज्ञान हो और उस तत्त्वज्ञान में रमण हो तो यहाँ धर्म होता है और कर्मों के भेदने का कारण बनता है। ७वें सूत्र में साधन की चर्चा चल रही है। वस्तु का अधिगम निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन ६ अनुयोगों द्वारा होता: है, जिनमें निर्देश, स्वामित्व का तो वर्णन किया जा चुका है, अब साधन का वर्णन चल रहा है। साधन के मायने है कारण। किसी भी बात का कारण होता है, और जहाँ कारण है वह कार्य है अर्थात् कारण कार्य का सम्बन्ध रहता है वस्तुओं से। और, यह बात व्यवहार में भी प्रसिद्ध है, और तत्त्वचर्चा में भी प्रसिद्ध है। यदि कार्य कारण भाव न हो किसी भी प्रकार का तो वह वस्तु ही नहीं है। जो असत् है, जो है ही नहीं, वहाँ कार्य कारण नहीं। जो है उसके साथ किसी न किसी रूप में कार्य कारण लगा ही हुआ है। जो असत् है उसका कोई नाम भी ले सकता है क्या ? अगर नाम लेता है तो सत् जरूर है, फिर भी बुद्धि से समझा तो नाम लेते हैं। जैसे गधे के सींग हैं क्या कोई चीज ? हैं तो नहीं, पर गधे भी होते हैं और सींग भी होते हैं। गधे के सींग तो होते नहीं, तो एक कल्पना से असत् को समझा। जब वह है ही नहीं तो उसका कारण भी कुछ नहीं, उसका कार्य भी कुछ नहीं। जो है उसका नियम से कारण होता है और कार्य भी होता है। जैसे भगवान का केवल ज्ञान। केवल ज्ञान है ना, तो उसका कारण क्या? उसका कारण है आत्मद्रव्य का ही आश्रय, ज्ञानस्वभाव का ही आलम्बन। न हो ज्ञानस्वभाव, न हो ध्रुव द्रव्य तो केवल ज्ञान कहाँ विराजेगा ? उसका भी कारण है। और, जगत् में जो कुछ भी विकार दिख रहे हैं उनका कारण तो स्पष्ट ही है। क्रोध, मान आदिक कषाय हों उसका कारण क्या ? उस प्रकार का ज्ञान विकल्प, वैसी योग्यता वाला जीव, वह है उन भावों का आधार और कारण, तो कारण बिना कार्य नहीं होता। और इसमें तो निमित्त कारण भी देखा गया है। कर्म प्रकृति का उदय और बाह्य साधन का आलम्बन। तो मिल गया ना कारण कार्यभाव।

सर्वथा क्षणिकवाद व सर्वथा नित्यवाद में अर्थक्रिया, साधनसाध्य, व्यवहार, प्रयोग आदि की असम्भवता - ऋजुसूत्रनय है ऐसा जिस नय का विषय इतना सूक्ष्म है कि वह एक समयवर्ती पर्याय को ही निरखता है. उसकी दृष्टि आगे पीछे नहीं रहती। पहले क्या था यह नहीं देखता नय, आगे क्या होगा इसे भी नहीं देखता ऋजुसूत्रनय। तो जहाँ केवल एक पर्याय ही दिखी, दूसरा कुछ दिखे ही नहीं तो उसका कारण क्या बताया जायेगा और कार्य क्या कहा जायेगा ? तो केवल ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से यह बात बनती है कि न कोई कारण है न कोई कार्य है इस दृष्टि में तो व्यवहार जरा भी नहीं बनता,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न कोई कार्य की सिद्धि होती। किन्तु एक नय का विषय है। वह विषय बताया है आचार्यों ने। अगर कोई इस ऋजुसूत्रनय का ही हठ करके रहे तो वह तो बरबाद हो जायेगा। मानो वह रूई की दुकान करता है और रूई में लग गई आग तो वह कैसे लोगों को बुलायेगा ? कैसे उस आग को बुझायेगा ? वह यही तो चिल्लायेगा कि दौड़ो रूई जल रही है। तो कोई आकर एक थप्पर लगाये कि तू झूठ क्यों बोलता ? अरे जो रूई है वह जल नहीं रही, और जो जल रही वह रूई नहीं। क्या जल रही ? रूई जल रही। अगर जल रही रूई कहलाये तो फिर रजाई में उसे भरायें, और जो जल रही क्या वह रूई रही ? तो इस नय की दृष्टि से तो कोई जबान भी नहीं हिला सकता। केवल वह जानता ही रहे इतना ही इस नय का काम है। अगर कोई इस नय का एकान्त करके सारी व्यवस्था बनाने चले तो उसका पागलपन है, जो भी वस्तु है उसका कारण भी है और कार्य भी है। दो प्रकार के विचार वाले एकान्त होते हैं—एक तो सर्वथा नित्य मानने वाले और एक सर्वथा अनित्य मानने वाले। याने वस्तु में जो दो अंश विदित होते हैं—द्रव्य और पर्याय तो कोई केवल द्रव्य का ही समर्थन करता है और कोई केवल पर्याय का ही समर्थन करता है पर्याय का समर्थन करने वाले द्रव्य को रंच भी नहीं मानते। जितनी पर्यायें हैं उतना ही वह पूरा है। और द्रव्य का समर्थन करने वाले एकान्तहठी दार्शनिक पर्याय को रंच भी नहीं मानते। ब्रह्म है, सत् है, व्यापक है, अपरिणामी है, ऐसे दो प्रकार के दार्शनिक होते हैं। अब यहाँ मोटे रूप में विचार करें तो इन दोनों से कोई काम बन सकता है क्या ? जो यह मानता है कि जीव हो या कुछ हो, सब एक है, अपरिणामी भी है, नित्य है, व्यापक है उसमें अवस्था नहीं, पर्याय नहीं, तरंग नहीं। तो भला बतलाओ कि अवस्था बिना, कोई उसके वर्तमान रूपक बिना वह कुछ पदार्थ भी रह सकेगा क्या ? उसमें कोई काम बन सकेगा क्या ? यदि ऐसा ही माना जाये तो मोक्ष के लिये फिर प्रयत्न क्यों करते ? क्योंकि जो मैं हूँ वह जरा भी नहीं बदलता। फिर मोक्ष के लिये जरूरत क्या पुरुषार्थ करने की ? और जो लोग ऐसा मानते हैं कि एक क्षण ही तो जीव रहता है, दूसरे क्षण में तो वह जीव नहीं है। दूसरे क्षण में दूसरे दूसरे जीव हैं तो उनको भी मोक्ष के लिये प्रयत्न की क्या जरूरत ? जो हुआ सो हुआ नहीं कि मिट गया। दूसरा जीव आया उसका वह जाने, तीसरा जीव आया उसका वह समझे। तो क्षणिकवाद में भी धर्म प्रवृत्ति नहीं रहती। सर्वथा नित्यवाद में भी धर्म-प्रवृत्ति नहीं रहती और कारण कार्य भाव भी नहीं रहता। तो जो है वह है तभी है जबकि उसका साधन रहता है। साधन बिना वस्तु की सत्ता नहीं रहती। तो इस सूत्र में साधन के द्वारा वस्तु का परिचय कराया गया है।

कलङ्कके साधनों का परिचय— अब जरा अपना ही साधन बताओ। तुम जीव हो तो जीव का साधन क्या ? किससे यह जीव बना ? मकान है तो वह ईंट गारे से बना, तो हम आप जो जीव हैं वह किस साधन से बने सो तो बतलाओ। आप कहेंगे कि बना ही नहीं। वह तो अनादि से है। भींट तो बनाई गई है। तो यहाँ बनाने का मतलब यह नहीं है। है जो है वह किस स्वरूप से रचा हुआ है ? अनादि से ही सही, मगर उसमें स्वरूप क्या है ? चीज क्या पायी जाती है सो बतलाओ ? तो कहना होगा कि इस जीव का साधन इस जीव का स्वरूप है। अपने ज्ञान और आनन्द स्वरूप से रचा हुआ है। और किसी से नहीं रचा। भले ही निमित्त पाकर कषाएँ जगती हैं मगर उन कषायों से जीव का निर्माण नहीं होता। कषाय तो कलंक है। निर्माण तो शुद्ध ज्ञान और आनन्द स्वभाव से है। यह ही तो विडम्बना है कि जिससे मैं रचा हुआ नहीं, जो मेरा स्वरूप नहीं, जो मेरे लिये कलंक हैं उस कलंक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर गर्व करते हैं। उस कलंक का सत्कार करते हैं तब ही तो ये संसारी जीव संसार में बस रहे हैं। क्यों संसार में जीव दुःखी होता, उसका कारण यह है कि इसने कलंक का आदर किया। और कलंक में उसने सुख माना। कलंक में ही यह राजी रहा। जैसे विष्टा का कीड़ा विष्टा में ही राजी रहता है इसी प्रकार यह अशुद्ध जीव कलंक में ही राजी रहता है। उसको मोह करने को चीज चाहिये, इसका दिन अच्छा कटेगा। इसको कोई प्रीति करने को वस्तु चाहिये फिर इसका समय जल्दी गुजर जायेगा। राजी रहता है। मोह और राग तो कलंक है। कलंक में ही राजी रहता। और प्रायः सभी कलंक में राजी रहते हैं। तो कोई किसी को पागल कैसे कह दे? सभी को कलंक प्रिय है। सभी कलंक की होड़ लगा रहे हैं ऐसी ही प्रायः सब संसारियों की स्थिति है, तो यहाँ कोई किसी को उन्मत्त कैसे कह सकता है? वे तो बढ़ावा देंगे। यह बहुत बड़ा धनी है, यह बहुत बड़ा आदमी है, इस तरह से लोग बढ़ावा देंगे कलंक वाले को कलंकी लोग। कलंक मायने विकार। रागद्वेष मोह भाव, ज्ञान के विकल्प। जिसमें असंतोष नहीं आशा नहीं, उसी में कलंक नहीं, तो जो कलंक के साधन हैं, कलंक न चाहिये तो उन साधनों को मिटायें। कलंक के साधन हैं तीन। एक तो खुद ही यह जीव जो अज्ञान में पड़ा है, अपने उस प्रकार के विचार बनाता है वह तो है उपादान साधन और जो अपने कमाये हुये कर्म हैं अर्थात् पूर्वभव के बाँधे हुये कर्म हैं उनका उदय होता है उस समय उनका विपाक अनुभाग खिलता है तो वह कहलाता है निमित्त। और तीसरा साधन है संसार की दिखने वाली वस्तुएँ जिनमें यह उपयोग रमाता है, जिन पर रुचि करता है स्त्री, पुत्र, वैभव, मित्रादिक ये सब हैं तीसरे उपचरित साधन। कलंक न चाहिये तो इन तीन साधनों से हटने का उपाय बनायें। और कलंक ही चाहिये तो अनादि काल से यह फर्म चल ही रही है, कुछ और सोचने की जरूरत ही नहीं।

कलङ्क के साधनों को दूर करने का साधन· कलंक के ये साधन कैसे मिटें उस पर कुछ दृष्टि दें। तो पहला साधन क्या कहा? उपादान, अशुद्ध जीव। उसकी योग्यता। ऐसी अशुद्धता आयी है अज्ञान से। इस अशुद्धता को मिटाना है तो तत्त्वज्ञान बनावें। तत्त्वज्ञान बिना, आत्मज्ञान बिना इस भव में भी शान्ति नहीं पा सकते, और जब परभव बिगड़ गया तो बुद्धिमान काहे के? मानो पुण्य का उदय है, वैभव मिला है, अनेक साधन जुटे हैं, दुनियापर हुकूमत है तो यह कितने दिन का काम है? इसके बाद क्या होगा? अगर परलोक का सुधार नहीं बनता तो यह कोई बुद्धिमानी का काम न रहा। यों तो नींद में स्वप्न में कोई राजा भी बन जाये और स्वप्न में राजा जैसे विकल्प भी करता, हुकूमत भी चलाता मगर मगर वह कितने क्षण का मौज? नींद खुली कि सब गायब। तो इसी तरह यहाँ जो कुछ ठाठ बाठ के मौज लिये जाते हैं वे कितने दिन के मौज हैं? पुण्य विघटा मौज खत्म या तत्त्व ज्ञान जगा तो मौज खत्म। पुण्य मिटने पर मौज खत्म हो तो उसमें तो आकुलता ही रहती है, पापोदय आया, अनेक विपदायें आयीं, विडम्बनाएँ हुईं, उसमें क्या फायदा पाया? और, तत्त्वज्ञान जगे, और उस तत्त्वज्ञान के बल से एक अनुपम अनूठी शान्ति मिले तो उस शान्ति के मुकाबले में इन वैषयिक सुखों का कुछ भी मूल्य नहीं है। यों ही छूट जाता है। तो विवेक बड़प्पन तो इसमें है कि यदि बड़े बने हैं, साधन अच्छे मिले हैं तो मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि समस्त प्रकार के विकारों को दूर करने का उपाय बनावें। अन्य तरह से श्रम करें उसमें बुद्धिमानी न समझी जायेगी।

आत्म लाभ के लिए अन्तर्बल की साधनरूपता—यहाँ साधन के द्वारा वस्तु का परिचय कराया जा रहा है। जैसे अभी कुछ ज्ञान किया जा रहा है तो ज्ञान करना तो एक काम है ना? इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान के पाने का साधन क्या है ? तो ज्ञान पाने का साधन तो अपने ही ज्ञान स्वभाव पर बल देना है। जब कभी कोई समस्या आती है तो उसका हल करने के लिये कोई भीतर ही तो बल लगाता है। बाहर तो कोई बल नहीं लगाता। तो ज्ञान का साधन है भीतरी आश्रय। और, बाह्य साधन है ज्ञानावरण का क्षय। सो उसके आप अधिकारी नहीं। आप तो शुद्ध ज्ञान स्वरूप की उपासना करें, सत्कार्य करें। ज्ञानावरण का क्षयोपशम अपने आप होगा, और उपचरित साधन हैं गुरुजन, शास्त्र का अभ्यास, लोगों से सुनना, तो इस प्रकार के साधन से ज्ञानकार्य उत्पन्न होता है। अब थोड़ा यह निर्णय बने कि बतलाओ वैभव में शान्ति मिलती है या ज्ञान में ? भले ही थोड़ी एक आपत्ति सामने रख सकते कि भोजन न मिले तब क्या करेंगे ? और भोजन मिलता है, बनता है तो कुछ चीज हो, वैसा हो। तो कैसे नहीं वैभव से शान्ति मिली ? तो चलो, इस समय, बात यद्यपि सही यह भी नहीं तो भी इतनी छूट कर लो। जितने में पेट भरे उतना इसके लिये आवश्यक है मगर जो पास में है चलो उतने की ही रक्षा कर लो, वह भी एक बात है, मगर जो नहीं है ऐसी चीज की आशा रखना, ऐसा मैं बन जाऊँ, इतना मैं बन जाऊँ, इतना मैं कर जाऊँ, इसकी क्या आवश्यकता है ? जो है उसकी रक्षा बनावें उतने में ही सन्तुष्ट रहें, उतने में ही अपने सब खाने, पीने, दान आदिक के विभाग बना लें, अपने अच्छे जीवन से जी लें, पर जो नहीं है, जो दूसरे बड़े धनिकों के पास दिखता है, जो अपने पास नहीं, उसकी तृष्णा, उसकी आशा, उसकी धुन बनाना यह क्या आवश्यक है ? यह शरीर भी नहीं रहने का। वैभव भी नहीं रहने का। खुद इसको अकेले जाना पड़ेगा, मगर यहाँ रहकर जो आशा के पुल बना रखा है, जिससे मन परेशान रहा करता है, वर्तमान की सम्हाल से मन को परेशानी नहीं, पर जो पास नहीं है उसकी आशा रखने में मन की परेशानी अधिक है। उससे लाभ क्या ? तो आशा छोड़ें और वर्तमान का उपयोग करें और फिर वर्तमान के उपयोग के लिये भी यह जीवन नहीं। यह जीवन तो आत्म साधना के के लिये है। तो यहाँ पर भी श्रद्धा सही रखें और अपने आत्मा की साधना बनावें। देखो क्षमाशील बने बिना धर्म का रास्ता न मिलेगा, घमंड छोड़ें बिना, नम्रता मन में आये बिना धर्म का और ज्ञान का रास्ता न मिलेगा। हृदय को सरल बनाये बिना, छल कपट का त्याग किये बिना धर्म का और ज्ञान का मार्ग न मिलेगा। और बाह्य पदार्थों की तृष्णा छोड़े बिना, अपने में उदारता जगाये बिना मेरा कहीं कुछ नहीं है ऐसी आस्था किये बिना तृष्णा छोड़े बिना भी धर्म और ज्ञान का मार्ग न मिलेगा। तो अगर ज्ञान प्रिय है तो ज्ञान जैसा अपने को ढाँचे में ढालो और अगर बाहरी चीज प्रिय है तो जैसा स्वच्छन्द रहे आये वैसा ही स्वच्छन्द रहने की जरूरत है। तो बाहरी वैभव चाहने पर वे आपको मिल ही जायें, इसका नियम नहीं। किया था कोई पूर्वभव में धर्म पुण्य उसका प्रताप है जो आज मिल सका। संयोग है, लेकिन धर्म पुण्य से अलग रहे आये तो यह नहीं हो सकता। सद्भाव धर्म पुण्य यह भी बहुत मर्म की चीज है।

फल की वाञ्छा किये बिना सत्कार्य करने की प्रकृति की श्रेष्ठता—कोई कहे कि कुछ हजार का, लाख का दान कर दें तो हमें पुण्य मिल जायेगा। अरे दान करने के एवज में लोगों से प्रशंसा चाही या किसी पत्थर आदिक में नाम खुदवाना चाहा तो पुण्य तो खत्म हो गया, उसका फल तो तुमने अभी लूट लिया। याने जैसे आजकल लोग हर बात में जल्दी मचाते हैं, मानो यहाँ मेरठ से अहमदाबाद पहुँचना है तो रेलगाड़ी से तो करीब २४ घण्टे में पहुँचेंगे, पर हेलीकाप्टर से जाना हो तो कोई ४-५ घण्टे में ही पहुँच सकते। ऐसा लोग करते ही हैं। आजकल हर काम में लोग जल्दी मचाते हैं। ऐसे ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दान का फल भी पाने की लोगों ने जल्दी मचायी है। इस दाहिने हाथ से दिया तो बायें हाथ में उसका फल लेने की सोचते, दान दिया तो समारोह मने, पत्थर में नाम खुदे। ठीक है, तुरन्त फल ले लिया, पर अब आगे के फल की आशा न रखो। तो जो दुनिया में अपने को गुप्त, छुपा हुआ देखे, दुनिया मुझे क्या जाने ? मैं जो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ इसका किसी को क्या परिचय है ? जब कोई मुझे जानता ही नहीं, जानता है तो इस पुद्गल को, नाक. आँख, कान आदि वाले शरीर को। और वास्तव में वह तो अपने भीतर में बसे हुये ज्ञान प्रतिबिम्ब को जानता है। तो जब हमारा कोई जाननहार भी नहीं है तो किसी से कोई कीर्ति प्रशंसा की आशा क्यों रखना ? मैं गुप्त हूँ, एक कल्याण के लिए इस मनुष्य जन्म में आया हूँ। मेरे को कल्याण चाहिये तो वह कल्याण मिलेगा। तो मेरा मैं साधन हूँ, उससे मिलेगा। बाह्य में मुझे कुछ नहीं देखना, कुछ नहीं बनाना, कुछ नहीं सजाना। आत्मकल्याण के लिये हमको अपने को ही देखना. अपने को ही बनाना, अपने को ही सजाना, यह अन्दर में काम हो तो आत्मकल्याण की बात है। थोड़ी देर को ऐसा ही मान लें कि हमने अनन्त भव पाये इस संसार में अनादि से, उन अनन्त भवों में अगर मैं ऐसा ही समझ लूँ कि मैंने यह एक भव पाया ही नहीं तो कौन सा टोटा पड़ जाता है ? अनन्त तो भव हैं, उन अनन्त भवों में एक भव को ही मान लें कि मेरा यह भव भव के लिये नहीं, किन्तु मैं आत्मकल्याण के दिये दान देता हूँ, इस भव में मैं प्रशंसा, कीर्ति, आदिक का उपयोग न करूँगा, किन्तु आत्मकल्याण का उपयोग करूँगा। यदि ऐसा एक इस भव का ही दान सा समझ लेवें अपने प्रभु के वास्ते तो यह ईमानदारी से दान हुआ। विषयकषायों की इच्छा न हो, बाहरी कीर्ति, यश, प्रतिष्ठा आदि की फिर मन में तरंगें न जगें, केवल धुन आत्महित की हो।

ज्ञान में ज्ञान को मग्न कर देनेमात्र का जीवन में एक कर्तव्य—कैसे यह मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा में मग्न होऊँ ? केवल एक यह ही मेरे लिए काम है, दूसरा नहीं। दूसरा काम यों नहीं कि बाहर में जो कमाई के या अन्य-अन्य कार्य होते हैं उन उनके वे पुण्योदय से होते हैं जिन-किनके भोगने में यह सब आयेगा। मैं कमाने वाला नहीं। बच्चे-बच्चे का पुण्य आपके रोजिगार में फर्म में काम दे रहा है। तो जब ये बाहरी काम मेरे करने से बनते नहीं, जिन जिनके उपयोग में, भोगने यह धन आयेगा उनका ही पुण्य काम कर रहा है—जो दुकान चले, फर्म चले, मील चले, तो उस पर मुझे क्या गर्व ? उसमें मेरी क्या ममता ? होता है आसानी से हो, हमारी एक डियूटी है वह निभाई। तो जो वास्तविक कार्य है उसका तो साधन बनाना नहीं चाहते और जो फोकट का है, बेकार का है, हमारे हाथ का नहीं, दूसरों के उदयानुसार है उसमें हमारा तीव्र विकल्प रहता है तो बतलाओ कि आत्महित का मार्ग कहाँ रहा ? इस जीवन को एक आत्महित के लिये समझें और उस जैसा उद्यम करें। उद्यम में यह है कि भोले बनें, गर्वहीन बनें, क्षमाशील बनें, नम्र बनें, जो मैंने अब तक किया वह केवल मकड़ी के जाल जैसा जाल पूरा, पर मैंने किया कुछ नहीं। ऐसा समझकर जो मोक्षमार्ग है, जो इस शान्ति का उपाय है उस उपाय के लिये प्रयास बनावें। यह प्रयास बनेगा अध्ययन से ? बालकों जैसा बन जानें से। जैसे बालक अपने को न कुछ समझता और मास्टरों को, गुरुओं को वह अपना सर्व कुछ समझता, तो विद्या सीखते हैं ना, इस प्रकार का ढाँचा बनाना होगा यदि वास्तव में आत्महित चाहते हैं तो। नहीं तो सुवा जैसी रटंत समझिये रट रहे हैं, समय गुजर रहा है। वही कल रटा, वही आज रटा, वही रटते चले जायेंगे। उस रटंत से तो शान्ति न मिलेगी। शान्ति तो अपने आपका जो सहज ज्ञानस्वरूप है उस सहज स्वभाव का आश्रय करने से शान्ति मिलेगी। मैं यह हूँ ऐसा निरखते हुये अपने आप में ही अपने ज्ञान को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बसायें तो शान्ति मिलेगी। शान्ति भी तो एक कार्य है। साधन है सहज ज्ञानस्वभाव का आश्रय करना। तो देखो साधन से वस्तु का परिचय होता और करने योग्य कार्य का भी परिचय होता। मैं कैसे करूँ, कैसे सफल होऊँ यह भी तो जो साधन जानेगा वही कर सकेगा। तो इस सूत्र में यह बिल्कुल युक्त कहा गया है कि निर्देश, स्वामित्व की तरह साधन से भी सम्यक्त्व का, ज्ञान का, चारित्र का, जीवादिक तत्त्वों का अधिगम होता है।

प्रत्यासत्ति से सिद्ध हुये सम्बन्ध के परिचय से साधित साधन द्वारा तत्त्व परिचय—साधन अनुयोग में मुख्यतया यह बताया जा रहा है कि एक ही वस्तु में जो कार्य होता है उसका साधन वही वस्तु है। अर्थात् एक द्रव्य में जो कई पर्याय बनती हैं उसका साधन पहली पर्याय सहित द्रव्य है। इस उपादान साधन की मुख्यता से साधन अनुयोग का वर्णन है। अब साथ ही साथ यह भी देखा जा रहा है कि एक कार्य के बनने में अनेक कारण होते हैं, जैसे घड़े के बनने में मिट्टी कारण है, यह तो अभिन्न साधन की बात है। वही उपादान है, पर दण्ड, चक्र, कुम्हार आदिक अनेक भी कारण हैं। तो यहाँ यह जानना है कि एक द्रव्य में तो द्रव्यप्रत्यासत्ति है अर्थात् जैसे घड़ा बनता है तो उससे पहले मिट्टी का लौंधा है, तो मिट्टी का लौंधा और घड़ा दोनों में द्रव्य तो मिट्टी ही है। एक मिट्टी की निकटता है, मगर घड़ा बनते समय डंडा, चका आदिक अनेक चीजें हैं, उनकी क्या समीपता है ? वे कारण कैसे बन गये ? उनका कारण कार्य सम्बन्ध किस तरह है ? यह चर्चा चल रही है अभिन्न पदार्थों के बारे में। तो जहाँ साधन कुछ भी देखा जाये वहाँ समीपता जरूर समझना है। वहाँ है कालप्रत्यासत्ति याने समय की निकटता, ऐसे दण्ड चक्र चले तो उसके अनन्तर घड़ा बन जाता है। तो यह समय की निकटता है। द्रव्य की निकटता तो है नहीं, वह है मिट्टी, यह है लोहा, काठ। क्षेत्रप्रत्यासत्ति भी न बनेगी। याने एक ही क्षेत्र में वे कई चीजें हैं इसलिये घड़ा बनने का कारण बन गया यह नियम न बनेगा। एक क्षेत्र में बहुत सी चीजें हैं, कोई कारण बनता कोई नहीं। तो क्षेत्र की निकटता से कारण कार्य सम्बन्ध नहीं है। भाव की निकटता से कारण कार्य सम्बन्ध नहीं, किन्तु काल की निकटता से भिन्न पदार्थों के साथ कारण कार्य सम्बन्ध है, कुम्हार ने इस तरह का व्यापार किया, उसके बाद घड़ा बन गया। तो इस समय के बाद ही घड़ा बन गया तो यह समय की निकटता है वहाँ। जहाँ घड़ा है, वहीं दण्ड आदि हैं, इस कारण घड़ा नहीं बना, क्योंकि वहाँ तो और भी अनेक चीजें हैं। तो कारण नहीं बनता। तो कहीं काल की निकटता कारण है कहीं भाव की निकटता कारण है, कहीं द्रव्य की निकटता कारण है। वहाँ बन जाता है कारण कार्य सम्बन्ध। तो घड़ा बनने में भाव दोनों का एक तो नहीं मिल रहा। मिट्टी का भाव मिट्टीपना है, डंडे का भाव काठपना है, कुम्हार का भाव चेतन है, मिट्टी का अचेतन है। तो यहाँ भाव का जोड़ा तो है नहीं, सिर्फ समय की निकटता की बात है। कारण कार्य सम्बन्ध परिणति और घटना से समझी जाती है जब सामने देख रहे हैं कि इस प्रकार के व्यापार करने वाले कुम्हार के व्यापार के बाद घड़ा बना तो सब लोग जानते हैं कि घड़ा बनने का कारण कुम्हार का ऐसा व्यापार है। तो कारण कार्य सम्बन्ध भिन्न में भी लगता है, अभिन्न में भी लगता है। इस तरह व्यवहारनय के आश्रय से सम्बन्ध बन जाता है। कहीं संयोग सम्बन्ध, कहीं गुरु शिष्य सम्बन्ध। सम्बन्ध बनने का कोई कारण होता है तो इस सम्बन्ध के ही समान दो पदार्थों में रहने वाला कारण कार्य भाव भी है, तब साधन अनुयोग सिद्ध होता है निर्देश से वस्तु का ज्ञान हुआ, स्वामित्व से भी हुआ, साधन के द्वारा भी होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

द्रव्यार्थिक के प्रकार रूप व्यवहार से साधन साध्य की व्यवस्था—यह सम्बन्ध केवल कल्पना का ही नहीं है। हाँ नयों की दृष्टि से देखें तो संग्रहनय और ऋजुसूत्रनय इन दोनों के आश्रय में सम्बन्ध नहीं बनता। संग्रहनय का काम है, सबका संग्रह जता देना। जोव सब आ गये। इसमें कारण कार्य की क्या गुंजाइश ? ऋजुसूत्रनय का काम है कि एक समय की पर्याय को ही दिखा दे। वहाँ भी कारण कार्य नहीं बनता, किन्तु जहाँ द्रव्य में भी दृष्टि हुई, पर्याय का भी सम्बन्ध हुआ, ऐसा जो व्यवहारनय है उससे कारण कार्य की सिद्धि होती। इसी कारण व्यवहार से पर्याय जानी जाती है, तिस पर भी व्यवहार से द्रव्यार्थिकनय का भेद कहा है। तो साधन की सिद्धि है। अगर साधन न हो तो मोक्ष का साधन ही कुछ न रहा, अभ्यास ही कुछ न बना। तो मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष फिर कैसे मिलेगा ? साधन सबके हैं, जो वही साधन पा ले उसका कार्य बनता है, जो वही साधन न पाये उसका कार्य नहीं बनता है। तो साधन जुटाया जाने पर भी साधन के जुटने का नाम कार्य नहीं, किन्तु साधन जुटने पर उपादान में जो नवीन अवस्था बनी उसका नाम कार्य है। यदि यहाँ कोई क्षणिकवादी कहे कि मोक्ष भी कोई चीज नहीं, साधन भी कोई चीज नहीं, वह तो केवल एक अविद्या का विलास है। जैसे मोक्ष के लिये कोई व्रत, तप, संयम, नियम पालन करे तो क्षणिकवादियों का कहना है कि वह अविद्या का अज्ञान का काम है। ज्ञान का काम तो केवल एक समय के ज्ञान को भोगना है। एक समयवर्ती ज्ञान का जो अनुभव है वह तो है ज्ञान का काम और जहाँ समय अधिक लगे, ऐसे कार्य का विश्वास लगे वह है अविद्या का विलास, क्योंकि क्षणिकवाद में कोई भी पदार्थ दो समय नहीं ठहरता और कार्य जितने किये जायेंगे उनमें तो सेकण्ड भी लगेंगे, मिनट भी लगेंगे, बहुत समय लगेगा। तो बहुत समय में किया जाने वाला कार्य अविद्या का विलास है। केवल एक सम्वेदन का, एक क्षण के सम्वेदन का जो अनुभव है सो ही वास्तविक है। सो ऐसा यदि माना जाये कि जो लोग मोक्ष के साधन बनाते हैं वह सब अविद्या का विलास है तो फिर मुक्ति भी अविद्या का विलास हुआ, वह भी वास्तविक चीज न ठहरी और खैर एक सम्वेदन का अनुभव भी सत्य मानते हो तो यह बतलाओ कि सम्वेदन ही अब मोक्ष कहलाया तो ऐसा भी यह मोक्ष ऐसा भी यह सम्वेदन का अनुभव करना क्या बिना साधन के होता है। अगर बिना साधन के हो तो वह नित्य बन जायेगा। जो जो भी चोज है और कारण उसका हो नहीं तो वह नित्य कहलाया। नित्य का लक्षण ही यह है कि जिसका कारण न हो और उसका सत्त्व हो उसे नित्य कहते हैं। तो सम्वेदन का अनुभव यह ही हुआ मोक्ष तो यह मोक्ष, यह सम्वेदन का अनुभव यदि बिना साधन के होता है तो नित्य हो जायेगा. फिर मोक्ष के लिये साधन बनाने की जरूरत ही क्या ? साधन अनुयोग माने बिना कोई धर्म प्रवृत्ति नहीं चल सकती। कोई व्यवहार नहीं चल सकता। तो जैसे क्षणिकवाद में मुक्ति नहीं बनती, ऐसे ही सर्वथा नित्यवाद में भी मुक्ति नहीं बनती।

वस्तु के एक क्षणवर्तित्व का अननुभव - भैया ! मूल में दो तरह के मुख्य सिद्धान्त हैं। जिसे आज कहते हैं वेदान्ती और बौद्ध अर्थात् नित्यवादी और क्षणिकवादी। नित्यवादियों ने ऐसा नित्यपन मान लिया कि जिसमें कभी भी कुछ भी विकार, परिणमन, तरंग, बदल हो ही नहीं सकती। अर्थात् अवस्था ही उसकी नहीं है, तो जब अवस्था ही नहीं है तो मोक्ष की जरूरत क्या ? जो जैसा है सो ही है, उसमें फेरफार होता ही नहीं है, अज्ञान से क्यों हटे, ज्ञान में क्यों आये ? हट भी नहीं सकता, आ भी नहीं सकता, तो सर्वथा नित्यवाद में भी सम्वेदन नहीं बन सकता। अनुभव करेगा ज्ञान का तो उसमें भी परिणमन तो होगा ही। परिणमन बिना अनुभव नहीं बनता और परिणमन मानते नहीं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो जब पर्याय नहीं माना तो अनुभव भी न बना। अनुभव न बने तो मोक्ष भी नहीं होता। तो जैसे सर्वथा नित्यवाद में मोक्ष की व्यवस्था नहीं ऐसे ही सर्वथा अनित्यवाद में भी मोक्ष की व्यवस्था नहीं होती। और, फिर अनुभव में भी विचारें, क्या किसी को क्षणिक निरंश तत्त्व स्वयं अनुभव में आ रहा है ? नहीं आ रहा है। इसी प्रकार क्या किसी को कूटस्थ नित्य, अवस्थाहीन कोई पदार्थ अनुभव में आता है ? नहीं आता। अगर अनुभव में आता हो तो कभी भ्रम न होना चाहिये। सर्वथा अनित्य अनुभव में आये तो भ्रम कभी न हो सकेगा और भ्रम देखा जाता है, इसी प्रकार सर्वथा क्षणिक में यदि अनुभूति बने, क्षणिक निरंश तत्त्व अनुभव में आये तो भ्रान्ति क्यों होती है ?

अनुभव की स्पष्टता—अनुभव वाली बात में भ्रान्ति नहीं हो सकती। जैसे एक कथानक है कि एक पुरुष के दो स्त्रियाँ थीं। बड़ी स्त्री के कोई बालक न था, छोटी स्त्री के बालक था, तो उस बालक पर उसे ईर्ष्या बहुत रहती थी। तो उसने मुकदमा दायर कर दिया कि यह लड़का मेरा है। पेशी हुई। पूछा तो उसने जवाब दिया कि जो मेरे पति की सम्पत्ति है वह मेरी कहलायेगी कि नहीं ? ·· हाँ हाँ कहलायेगी। तो यह बच्चा पति का है ना, तो मेरा भी है, इसलिए बच्चा मेरे को दिया जाये। अब वह राजा विचारता है कि इस युक्ति से तो काम नहीं चलता, सही निर्णय कैसे दें ? पर उसने एक चतुर आदमी को नियुक्त किया। उसने क्या काम किया कि पहले से ही सिपाही को कह दिया कि हम तुमको जब कहें तब तलवार लेकर हाजिर हो जाना। इन दोनों पक्षों में पहली स्त्री और दूसरी स्त्री में विवाद छिड़ गया। पहली स्त्री कहती कि मेरा लड़का, दूसरी कहती कि मेरा लड़का। तो जज ने यह फैसला दिया कि यह लड़का तुम दोनों का है, क्योंकि पति की जायदाद है, उसके तुम दोनों हक-दार हो। इसलिये यह निर्णय है, सिपाही को बुलाया, नंगी तलवार लिए आ गया, और निर्णय सुनाया कि इस बालक के दो टुकड़े करो बराबर बराबर, क्योंकि लड़का दोनों का है। एक टुकड़ा इसे दो, एक इसको दो। तो जिसका लड़का था वह स्त्री कहने लगी कि महाराज यह लड़का मेरा बिल्कुल नहीं है, यह इसी का ही है और इसको ही दे दिया जाये। तो अनुभव ने बता दिया कि जो मना करती है कि यह मेरा बच्चा नहीं, तो बच्चा इसी का है, क्योंकि इसे यह ममता है कि यदि यह लड़का जिन्दा रहेगा तो किसी के भी पास रहे, मैं उसका मुख देख देखकर प्रसन्न रहूँगी, और जिस स्त्री का लड़का न था वह तो मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। अच्छा न्याय हुआ, गुजरने दो। तो अनुभव ने जो बताया उसमें भ्रम तो नहीं होता। कहे (सुने) का भ्रम हो जाये, देखे का भ्रम हो जाये, कोई बात आप देख लो और आपको अनुचित लगे। कहो अनुचित न हो। कहो आप कोई बात अनुचित सुन लें और कहो अनुचित न हो। यदि क्षणिक तत्त्व होता तो सबके अनुभव में होता। फिर किसी भी बात में भ्रम नहीं हो सकता। इसी तरह सर्वथा नित्य ब्रह्म होता तो वह भी अनुभव में आता। वहाँ भी भ्रम नहीं होता। अनुभव का ज्ञान है ज्ञान में जच जाना। तो ये मुक्ति के स्वरूप दोनों जगह न रहे, न सर्वथा नित्यवाद में न सर्वथा क्षणिकवाद में। मुक्ति का स्वरूप तो एक ही है– समस्त कर्मों से छुटकारा हो जाना। तो मोक्ष हुआ समस्त कर्मों से छुटकारा। इसके विपरीत जो नित्यवादी कहते हैं कि सम्वेदन का अनुभव होता और क्षणिकवादी भी कहते हैं सो कथनमात्र है, अनुभव तो द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु का होता है।

अनुभव और परिस्थिति—अनुभव नाम है ज्ञान में जच जाना। कुछ प्रसंग ऐसा होता कि कुल रीति से, सम्प्रदाय के मोह से, अपने किसी पांडित्य के संस्कार से बात कही जाये और ज्ञान में न उतरे ऐसी भी परिस्थिति होती है। एक बार राजा भोज की सभा में सब विद्वान बैठे थे। भोज ने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा —आज हमको ऐसी कविता दिखाओ जैसी हमने कभी देखी न हो। तो एक विद्वान ने अपनी जेब से एक कोरा कागज निकाला, जिसमें कुछ न लिखा था, उसे पेश कर दिया और कहा—महाराज, जैसी कविता आपने कभी भी नहीं देखी वह कविता यह है। राजा बोला – कहाँ है ? लाओ देखें। ••• ···लीजिये महाराज, मगर इस कविता की एक तारीफ है कि जो असली बाप का होगा उसको ही वह कविता दिखेगी। अब कागज तो ले लिया, मगर उसमें कुछ भी नहीं लिखा। राजा आश्चर्य में पड़ गया, मगर अपनी पोजीशन सम्हालने की पड़ी थी—मैं इन हजारों विद्वानों के समक्ष यदि कह दूँ कि इसमें तो कुछ भी नहीं लिखा तो लोग समझेंगे कि यह असल बाप के नहीं हैं, इसलिये वह कह उठा — वाह वाह कितनो सुन्दर कविता है। ऐसी तो मैंने कभी भी नहीं देखी ऐसी अन्य पंडितों को दिखाया वे भी ऐसा ही बोले। तो करना कुछ पड़ता है और अनुभव उसका नहीं होता। नित्य ब्रह्म है, एक गणित जैसा हिसाब बना मगर शब्द योजना करके कहा जाता है, पर ज्ञान में, अनुभव में नहीं उतरता। अनुभव में उतरेगा तो सबको एक सा उतरेगा। जैसे कोई भी भोजन खाये तो जितने लोग खायेंगे सबको एक सा अनुभव उतरेगा। बोलने की बात अलग है, अनुभव में आने की बात अलग है। तो नित्य एकान्त में और क्षणिक एकान्त में जिस तत्त्व की प्ररूपणा वे करते हैं वे खुद ऐसा अनुथव नहीं कर पाते। तो मोक्ष इसका नाम नहीं है, मोक्ष नाम है छूट जाने का। समस्त कर्मों से छूट जाने का। उसमें तो न मन वचन काय के कर्म रहे, न ज्ञानावरणादिक कर्म रहे, न शरीर नोकर्म रहे, सभी कर्मों से छुटकारा होने का नाम मोक्ष है। और, मोक्ष होता है बंध पूर्वक। मोक्ष मायने छुटकारा। छुटकारा कब कहलाता, जब कि कोई बंधा हो। तो बंध भी वास्तविक है और मोक्ष भी वास्तविक है। साधन के द्वारा तत्त्व का परिचय करने की बात कही जा रही है।

अज्ञानान्ध दूर कर साधन अनुयोग द्वारा तत्त्व परिचय करने का स्मरण दिलाता हुआ साधन अनुयोग के वर्णन का उपसंहार - भैया ! तत्त्व तो अनेक हैं, सबके साधन हैं। तो बंध के भी साधन हैं और मोक्ष के भी साधन हैं। बंध के साधन हैं खोटे परिणाम, कषाय भाव और मोक्ष के साधन हैं शुद्ध परिणाम, स्वभाव की दृष्टि। तो मोक्ष के साधन को अविद्या का विलास न कहना क्योंकि मोक्ष व मोक्ष साधन तात्त्विक है, अन्यथा वह कभी बने कभी न बने यह बात नहीं बन सकती। जब बने तब कार्य बने, न बने तब कार्य न हो, इस प्रकार साधन अनुयोग द्वारा सबका परिचय करते जायेंगे। सम्यग्दर्शन कैसे होता ? स्वभाव का आश्रय करने से सम्यक्त्व होता है। सम्यग्ज्ञान कैसे होता ? निज ज्ञानस्वभाव का आश्रय करने से सच्चा ज्ञान जगता है। सम्यक्चारित्र कैसे होता ? निज ज्ञानस्वभाव में ज्ञान की स्थिरता बनायें तो चारित्र होता। जीव कैसे होता ? जीव द्रव्य तो किसी साधन से नहीं होता, किन्तु जीव की जो अवस्था है उन अवस्थाओं के साधन हैं। दुर्गति में भ्रमण करने के साधन हैं मोह और कषाय। समस्त झंझटों से छुटकारा पाने का साधन है, शुद्ध परिणाम। आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष, सबके साधन होते हैं। तो निर्देश स्वामित्व साधन वाले सूत्र में ये सभी शब्द उपयुक्त हैं और साधन अनुयोग के द्वारा वस्तु का परिचय कराने की बात युक्ति संगत है। जब तक वस्तु का भली भाँति परिचय नहीं होता तब तक इस जीव के अन्धेरा ही छाया रहता है, और अन्धेरे में भी जैसे लोग अटपट काम करते हैं इसी प्रकार अज्ञान अन्धेरे में भी लोग अटपट काम किया करते हैं। भला, बतलाओ मोह करना, संसार के अनन्त जीवों में से दो चार जीवों को अपना मानना, उसी के लिये ही तन, मन, धन, वचन, जीवन भी न्योछावर कर देना, यह अटपटा काम नहीं है क्या ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन जब अज्ञान बसा हुआ है तो यह अटपट काम करता है तथा अटपटा काम करके भी अपनी कुशलता समझता है। जैसे उन्मत्त जन अटपट काम करते हैं इसी तरह मोह में उन्मत्त पुरुष अटपटा काम करता है, फल क्या होता है? परिश्रम, क्लेश. पापबंध, संसार भ्रमण। यदि असार संसारीय सारी इन विडम्बनाओं को दूर करना है तो आत्मज्ञान करिये। आत्मज्ञान करने के लिये जब आप चले तो इतना निर्णय पहले रखना ही होगा कि ये जड़ वैभव सब सारहीन वस्तु हैं। तो आत्मा के परिचय की बात इस सूत्र में में, समस्त पदार्थों के परिचय की बात इस सूत्र में कही जा रही है। निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण स्थिति और विधान (प्रकार) इन ६ अनुयोगों द्वारा वस्तु का परिचय होता है। इसमें निर्देश, स्वामित्व और साधन इन तीन अनुयोगों का वर्णन यहाँ तक हुआ।

अधिकरण अनुयोग की उपयोगिता का परिचय—अब अधिकरण का परिचय कराते हैं। अधिकरण कहते हैं आधार को। कौन वस्तु किसके आधार रहता है? यह परिचय किया जायेगा अधिकरण अनुयोग के द्वारा। जैसे बाहर में देखते हैं– यह पुस्तक चौकी के आधार पर है, यह चौकी फर्श के आधार पर है। जैसे यहाँ व्यवहार में आधार देखा जाता है उस तरह भी परिचय करें और वस्तु स्वरूप में भी आधार का परिचय करें। आत्मा में ज्ञान है अर्थात् ज्ञान का आधार आत्मा। द्रव्य में गुण है याने गुण का आधार आत्मा। तो आधार की दृष्टि से भी वस्तु का परिचय होता है। यहाँ क्षणिकवादी अपना अभिप्राय रख रहे हैं कि पदार्थ में परस्पर आधार आधेय सम्बन्ध तो बनता ही नहीं है, क्योंकि वास्तव में कोई पदार्थ किसी दूसरे के आधार पर नहीं है। क्षणिकवाद में केवल क्षणिकता की ही बात नहीं है, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों की अपेक्षा अंश देखने की बात है। अर्थात् इतना छोटा अंश ग्रहण करे उसे पदार्थ मानें, जिसका दूसरा हिस्सा हो न सके। तो समय में जिसका दूसरा हिस्सा न हो वह है एक क्षण। अर्थात् एक क्षण में रहने वाला जो कुछ भी है वही है पूरा पदार्थ। यह तो काल दृष्टि से निरंश पदार्थ है, और द्रव्यदृष्टि से एक-एक परमाणु बस वही द्रव्य है। दो परमाणु कभी मिल ही नहीं सकते क्षणिकवाद सिद्धान्त में। इसको निरंशवाद कहते हैं। एक पदार्थ से दूसरा पदार्थ भिड़ नहीं सकता। भले ही निकट पड़ा रहे। बहुत से पदार्थ हैं, पर हैं सब स्वतन्त्र-स्वतन्त्र। क्षेत्रांश में एक परमाणु प्रमाण प्रदेश ही पूर्ण क्षेत्र है, कालाणु के एक समय की अवस्था ही पूरा पदार्थ है। भावांश में जिस समय जो ज्ञान है वह सर्वांश है निरपेक्ष है। इस तरह निरंशवाद में परमाणु ही तत्त्व है, प्रदेश ही तत्त्व है, एक समय का पदार्थ ही तत्त्व है और मात्र एक समय का सम्वेदन ही तत्त्व है। और ये हैं स्वतन्त्र तब इनके आधार की क्या जरूरत? सब पदार्थ अपने आप में अकेले में विलास कर रहे हैं। अधिकरण नहीं बन सकता, इसलिए अधिकरण नाम यहाँ न रखना चाहिये। निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण। यह अधिकरण शब्द यहाँ से निकाल दें ऐसा शंकाकार कह रहा है। समाधान में सोचें कि आधार आधेय भाव की प्रतीति सबको हो रही है। दिखता है आधार। पुस्तक चौकी पर, चौकी तखत पर। तखत का आधार फर्श। फर्श का आधार आकाश। यों अनेक द्रव्यों में भी आधार आधेयपना दृष्टि में आ रहा और एक द्रव्य में भी गुणों का आधार द्रव्य। कहा ही है—गुण पर्ययवान को द्रव्य कहते हैं। जिसमें गुण और पर्याय हो सो द्रव्य है। सो रहा ना आधार। आधार से भी परिचय होता है।

अधिकरण के परिचय बिना जिज्ञासा की तृप्ति की असम्भवता—अभी कोई मनुष्य आये अपरिचित तो उससे सर्वप्रथम दो ही बात तो पूछते हैं—(१) आप कौन हैं? और (२) आप कहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रहते हैं ? इस प्रश्न का जो उत्तर है वही है आधार। आपको चैन तो नहीं पड़ती, जब तक यह न समझ जायें कि यह कहाँ रहता। आप किसी को नौकरी भी तो नहीं दे सकते, जब तक आप यह न जान जायें कि यह कहाँ रहता ? आधार का जान लेना कितना आवश्यक है। व्यवहार ही नहीं बन सकता, जब तक कि परिचय न हो कि यह कहाँ रहता ? और, कोई आधार का, रहने का परिचय न करे, धोखा खा जायेगा और वह नुकसान में ही रहेगा। उसका फिर कुछ पता नहीं लगा सकता। तो जैसे व्यवहार में आधार समझने को आवश्यकता है, ऐसे ही वस्तुस्वरूप में भी आधार समझने की आवश्यकता है। गुण का आधार द्रव्य और निश्चय से पदार्थ का आधार वही पदार्थ। तो आधार आधेय सम्बन्ध सब जगह बराबर प्रसिद्ध हो रहा है, इसलिये अधिकरण अनुयोग का अभाव नहीं कह सकते। द्रव्य को तो सब मानते हैं जैनों ने भी माना, वैशेषिकों ने भी माना, बौद्धों ने भी माना, नैयायिक मानते। सब लोग द्रव्य को अवश्य मानते हैं, और गुण भी मानते हैं। बिना गुण का द्रव्य क्या ? और, मानने न मानने का क्या सवाल ? एक अनुभव बताता है कि कोई चीज है तो उसमें कुछ न कुछ विशेषता होती है। विशेषता बिना वस्तु क्या ? अर्थात् जो विशेषता है उसका आधार वस्तु है। सबको भली भाँति विदित है फिर आधार अनुयोग का निषेध कैसे किया जा सकता है ? गुण भी क्रिया भी, परिणति भी सभी जीवों को प्रकट भास रही है और उनका आधार है ना कोई एक। चक्कू चल रहा। किसमें चल रहा ? चक्कू में। उसका आधार चाकू और व्यवहार में आधार हाथ अथवा सब्जी। आधार आधेय समझे बिना वस्तु का परिचय नहीं होता। इसलिये उमास्वामी ने इस सूत्र में आधार आधेय की बात कही वह बिल्कुल युक्त है।

अधिकरण अनुयोग की प्रतीतिसिद्धता होने पर अधिकरण अनुयोग के प्रतिषेध का शंकाकार का पुन: प्रयास कोई कहे कि द्रव्य तो एक समय का है, दूसरे समय रहता ही नहीं। दूसरे समय दूसरा हो जाता, लेकिन वह बात केवल वचन जाल की है। प्रत्यभिज्ञान द्वारा सिद्ध होता है कि द्रव्य पहले था, अब है, आगे भी रहेगा। मैं पहले भी था, अब हूँ और आगे भी रहूँगा। तो इस प्रत्यभिज्ञान द्वारा वस्तु की ध्रुवता सिद्ध होती है। अनुमान से भी आधार आधेय जाना जाता है। व्यवहार में भी कहते ही हैं--बाबू जी कहाँ हैं ? तो बच्चा बोलता है कि कमरे में। व्यवहार भी आधार आधेय का परिचय कराये बिना चलता नहीं और वस्तु के स्वरूप का बोध भी आधार आधेय के जाने बिना चलता नहीं। आप कैसे समझेंगे कि द्रव्य किसे कहते हैं ? पदार्थ किसे कहते हैं ? समझाते हैं कि जिसमें शक्ति हो, जिसमें सत्ता हो, जिसमें गुण हो, जिसमें पर्याय हो वह पदार्थ है। तो आधार आधेय की बात कह कर ही तो समझाया। समझ भी न बनेगी यदि आधार अनुयोग का आश्रय न लिया जाये। यहाँ शंकाकार कहता है कि आप जो भी आधार आधेय के दृष्टान्त देते हैं उनमें वास्तव में आधार आधेय सम्बन्ध नहीं है किन्तु और ही कुछ सम्बन्ध है। जैसे कहा घड़े में पानी। मोटे रूप में तो यह हो समझ में आ रहा कि पानी आधेय है, घड़ा आधार है। घड़े में पानी है, पर निरंशवादी यहाँ यह बात बतला रहे हैं कि घड़े में पानी, ऐसा कहने से आधार आधेय न बना, किन्तु कार्य कारण बना। वह कैसे ? पहले यह घड़ा पानी रहित था, अब यह घड़ा पानी सहित हो गया। अर्थ तो यह ही निकला। तो पानीरहित घड़ा है पूर्व पर्याय और पानी सहित घड़ा है उत्तर पर्याय। तो पूर्व समय का जो रीता घड़ा है, पानी आ जाने पर क्या हो गया ? वह रीता घड़ा पानी सहित घड़े का उत्पादक बन गया। न हो रीता घड़ा तो पानी कहाँ डालेंगे ? तो आधार आधेय कोई चीज नहीं। वह तो कार्य-

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण का रूप है। जैसे मेरे में घड़े का ज्ञान हुआ तो अर्थ यह निकला कि घड़ा के ज्ञान से मैं रहित था, अब घड़े का ज्ञान बना। अब ज्ञानसहित हो गया तो घटज्ञान रहित मैं घटज्ञानसहित आत्मा का उत्पादक हुआ। कार्य कारण भाव है आधार आधेय भाव नहीं। यह ही शंकाकार जब साधन अनुयोग का विचार चल रहा था तो कार्यकारण भाव का खण्डन कर रहा था। अब आधार अनुयोग का वर्णन चल रहा है, तो किसी भी प्रकार आधार को मिटाने पर कमर कसी है। अब कार्य कारण मानकर आधार आधेय को मिटा रहा है, किन्तु यह आशंका सही नहीं है।

साधन अनुयोग से अधिकरण अनुयोग की विलक्षणता – कार्यकारणमात्र कहकर अधिक समाधान में सोचें कि कार्य कारण और आधार आधेय में क्या फर्क है ? भले ही कहीं कार्य कारण ही आधार आधेय बन जाये, लेकिन कुछ ऐसी भी घटनाएँ हैं कि कार्य कारण है और आधार आधेय नहीं है और कोई घटनाएँ ऐसी हैं कि कार्य कारण तो नहीं है और आधार आधेय होता है। कार्य कारण जैसे आँख के द्वारा पदार्थ का ज्ञान हुआ तो आँख कारण है और पदार्थ का ज्ञान कार्य है। लेकिन आँख पदार्थ में धरी हो या आँख में पदार्थ धरा हो सो तो नहीं है। कारण कार्य भाव तो है और आधार आधेय नहीं है। और कहीं कारण कार्य हैं और आधार आधेय भी है। जैसे आत्मा में ज्ञान, आत्मा कारण है ज्ञान कार्य है, आत्मा आधार है, ज्ञान आधेय है। दोनों बातें बन गई। आकाश में अवगाह। कोई पदार्थ आकाश में रखा है तो आकाश में अवगाह होना यह आधार आधेय भी बन गया, कारण कार्य भी बन गया। अवगाह कार्य है, आकाश कारण है। तो कार्य कारण ही का नाम आधार आधेय नहीं है। आधार आधेय तो वस्तु किस आधार में है यह बताया जाता है। कार्य कारण में वस्तु किस साधन से उत्पन्न होता है यह बताया जाता है। अधिकरण अनुयोग का निषेध किया ही नहीं जा सकता भले ही अनेक बातें ऐसी हैं कि आधार आधेय भी चल रहा है, कार्य कारण भी चल रहा है। जैसे तवे पर रोटी रखें तो रोटी सिक गई। तो उस रोटी का आधार तवा है, उसके सिकने का कारण भी तवा है, मगर कारणपना दूसरी चीज है, आधारपना दूसरी चीज है। तवा नहीं गरम है तब भी आधार तो है ही, गरम होने का कारण नहीं। गरम है तो सिक गई। तो साधनपना दूसरी चीज और आधारपना दूसरी चीज है।

अधिकरण अनुयोग द्वारा तत्त्व परिचय का दिग्दर्शन—आधार अनुयोग (अधिकरण अनुयोग) द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र और जीवादिक ७ तत्त्वों का निर्णय किया जाता है। बोलो सम्यग्दर्शन का आधार कौन ? सम्यग्दर्शन का आधार आत्मा। सम्यग्दर्शन का आधार कोई विशिष्ट भाव। जैसी अभेद दृष्टि करें, उत्तर आ जायेगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग् दृष्टि से भिन्न चीज नहीं, अर्थात् सम्यग्दर्शन का आधार भोग भूमिया, मनुष्य तिर्यंच, सम्यग्दर्शन का आधार कर्म-भूमिज मनुष्य, तिर्यञ्च। सम्यग्दर्शन का आधार देव, नारकी, परमात्मा आदि जिस दृष्टि से उत्तर चाहें उस दृष्टि से उत्तर आ जायेगा। पर निश्चय से तो विपरीत अभिप्राय का नष्ट हो जाना ऐसी जो निर्मलता है वह निर्मलता सम्यक्त्व का आधार है। सम्यग्ज्ञान का आधार ज्ञानस्वभावी आत्मा। सम्यक् चारित्र का आधार आत्मा सभी तत्त्वों में बात समझ लीजिये—आधार का अर्थ कारण भी है। आधेय न रहेगा। आश्रव का आधार क्या ? जीव के रागादिक भाव। कर्म में कर्म परमाणु। तो आधार आधार नरहे तो आधेय को समझे बिना वस्तु का सही परिचय नहीं होता, अतः अधिकरण अनुयोग जो उमास्वामी ने बताया है वह युक्ति संगत है। निरंशवादी पुनः प्रश्न करते हैं कि आपने तो कह दिया कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण का आधार द्रव्य है याने गुण द्रव्य में रहते हैं पर यह तो बताओ कि गुण का आधार तो द्रव्य है और द्रव्य का आधार क्या है ? कुछ बताओगे तो सही। तो फिर उसका आधार बताओ, फिर उसका आधार बताओ। तो यों आधार समझने के लिये अनवस्था हो जायेगी। आखिर ४-६ बात बतावेंगे कि गुण का आधार द्रव्य है. द्रव्य का आधार आकाश है। कुछ भी बतावेंगे। दो एक बात बताने के बाद चुप हो जायेंगे। या यह कहना पड़ेगा कि यह तो अपने आधार में है। तो जब ३-४ बातें कह चुकने के बाद यह जवाब देने से काम चलेगा कि यह तो अपने आधार में है, तब फिर सीधे पहले ही गुणों को क्यों नहीं यह कह देते कि गुणों का आधार गुण है ? गुण-गुण में रहते हैं, गुण द्रव्य में क्यों बताते ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य समझाते हैं कि भाई आधार की कल्पना अटपट नहीं है, सही है और अनवस्था दोष भी नहीं है। जैसे पूछा कि गुणों का आधार क्या ? उत्तर - द्रव्य है। द्रव्य का आधार क्या ? आकाश है। आकाश का आधार क्या ? यह स्वयं आकाश। क्योंकि जो सर्वव्यापक हो, जिसका अन्त नहीं है ऐसे पदार्थ का आश्रय कोई दूसरा नहीं होता।

अभेद अधिकरण द्वारा वस्तु परिचय की महिमा—वस्तु का परिचय आधार आधेय द्वारा दो दृष्टियों से कराया जाता है—(१) अभेद दृष्टि से, (२) भेद दृष्टि से। जहाँ दो बात सामने हों वहाँ भी आधार आधेय है। जहाँ केवल एक हो वहाँ भी आधार आधेय होता है। उस एक में आधेय अंशपना और आधार अंशपना यह दो विधियों से जान लिया जाता है। जैसे अंगुली अंगुली में रहती है। तो जिस अंगुली का रहना बताओ वह अंगुली आधेय के रूप से समझी गई और जिस अंगुली में रहना बताया वह आधार के ढंग से समझी गई। वहाँ केवल आधार आधेय अंश की कल्पना है। और वास्तविकता तो यही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूप के आधार में रहता है। यह तो व्यवहार से कथन है कि द्रव्य आकाश में रहता है। आधार आधेय का निश्चय वर्णन तो एक में ही कहलाया। तो जब आकाश अपने आधार में है तो आगे अनवस्था न चली। कोई दूसरा आधार नहीं और आकाश अपने आधार में है, इसका कारण है कि वह अन्तविहीन है। आधार हमेशा बड़ा होता है और आधेय छोटा होता है। वह चाहे आकार को माने चाहे भाव भाववान से समझे, चाहे किसी ढंग से समझे, जिसमें आधारपना निरखा वह होता है विशाल और जिसमें आधेयपना देखा वह होता है छोटा। क्षणिकवादियों ने यह पूछा कि गुणों का आधार क्या ? तो उत्तर दिया द्रव्य। द्रव्य का आधार क्या ? उत्तर होगा आकाश। आकाश का आधार क्या ? स्वयं। आकाश स्वप्रतिष्ठ है याने खुद ही खुद के आधार रहता है। देखो यह आकाश कितना बड़ा है ? इसमें प्रदेश कितने हैं ? अनन्तानन्त। कितने प्रदेश। जितने दुनिया में जीव होते हैं उससे अनन्तगुने प्रदेश हैं आकाश में। जीव तो अक्षय अनन्त हैं। हाँ तो रहें, और उससे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणु होते हैं, और उन सब अनन्त पुद्गल परमाणुओं से भी अनन्त गुने आकाश के प्रदेश हैं। यों भी कल्पना करो कि आकाश में एक दिशा में कोई दौड़ लगा रहा है, और मानो उसकी अनन्त वर्ष की आयु हो, होती तो नहीं कोई। कल्पना कर रहे। और वह बड़ी तेजी से एक घण्टा में १० मील दौड़ लगा रहा है, तो दौड़ लगाते लगाते क्या वह कभी आकाश के उस जगह तक पहुँच जायेगा जिसके बाद आकाश न हो ? ऐसी कोई जगह नहीं। ऐसा कोई स्थान है क्या कि जिसके बाद आकाश खत्म ? जैसे चौकी है तो चौकी पर चलते जाओ तो चौकी समाप्त यहाँ हो गई। जैसे अपने देश का अथवा आज की मानी हुई दुनिया का कोई ऐसा स्थान है कि जिसके बाद वह नहीं ? इस तरह क्या आकाश भी हो सकता है कि आकाश के बाद फिर आकाश न मिले ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्पना करो कि हाँ हो सकती ऐसी जगह कि जिसके आगे आकाश नहीं ! तो कल्पना से बताओ कि फिर वहाँ है क्या ? पोल या ठोसा । ठोस है तो आगे आकाश है, वहाँ भी आकाश है । तो आकाश का अन्त नहीं है, असीम है, उस आकाश को अन्य के आधार की आवश्यकता नहीं पड़ती, तो यों अनवस्था दोष नहीं होता । इसलिए अधिकरण अनुयोग दूषित तत्त्व नहीं है ।

दार्शनिक विधि से अनुमान प्रयोग द्वारा अधिकरण अनुयोग का समर्थन— अब उसे जरा दार्शनिक विधि से अनुमान प्रयोग बनाकर समझिए कि यह आकाश अपने ही आधार पर है, क्योंकि चारों ओर से आकाश अन्त विहीन है । अर्थात् किसी भी तरफ इसका अन्त नहीं है। अगर आकाश अपने आधार न होता तो इसका अन्त जरुर होता । और आकाश चारों ओर से अन्तविहीन है, इसका हेतु यह है कि जितने भी अव्यापक पदार्थ हैं तो तो आकाश हैं नहीं । आकाश तो उन सबसे निराला है और है एक द्रव्य रूप । तो यों आकाश अन्त-विहीन और अन्तरहित सर्वव्यापक पदार्थ है, उसमें दूसरा आधार नहीं ढूढ़ा जाता । तो आकाश के बारे में क्या बात बोला कि यह अन्तरहित है और समस्त अव्यापक पदार्थों का इसमें अभाव है । आकाश के बारे में दो बातें कही गई हैं, फिर सरलता से समझिए आकाश का किसी भी जगह ओर छोर नहीं है, किसी भी दिशा में चले जावो, दूसरी बात जितने भी अव्यापक पदार्थ हैं वे उनमें ही हैं, उनका आकाश में अत्यन्ताभाव है । ऐसी बात सुनकर निरंशवादी कहते हैं कि आप यह सिद्ध करना चाहते हो कि आकाश अपने आधार पर है, व्यापक है, क्योंकि वह अन्तरहित है । जो अन्तरहित है वह सर्वव्यापक है । मगर यह बात ठीक नहीं जचती । देखो रूप परमाणु, रस परमाणु, परमाणु अन्त-रहित है । परमाणु का अन्त नहीं है, लेकिन वह व्यापक है नहीं । परमाणु का अन्त नहीं, इसका मतलब यह हैं कि परमाणु कहते हैं एक प्रदेश को । और, एक प्रदेश में कोई यह बता सकता है क्या कि इसकी आदि यह है और अन्त यह है ? एक कोई सबसे छोटा बिन्दु हो जिसमें मापके दो प्रदेश न आयें उसमें क्या कोई कह सकता है कि इसकी यह आदि है और इसका यह अन्त है ? आदि अन्त होगा तो दो में होगा, एक में न होगा । तो परमाणु भी ऐसी ही चीज है, और जैन भी मानते हैं कि परमाणु आदि मध्य, अन्त से रहित है । एक प्रदेशी परमाणु है । उसकी आदि वही, उसका मध्य वही और उसका अन्त वही ; तो परमाणु में अन्त उसका नहीं है, मगर व्यापक तो नहीं है । तो उसका यह कहना कि जो अन्तरहित हो सो व्यापक है, यह बात नहीं बनती, और निरंशवादी तो एक परगाणु को भी पूरा द्रव्य नहीं मानता । वह कई द्रव्यों से मिला हुआ है । उसमें रूप परमाणु है, रस परमाणु है, गंध पर-माणु है, तो उन सब सब परमाणुओं से मिला हुआ परमाणु है यह जैन लोग कहते हैं । तो एक-एक परमाणु में कोई अन्त नहीं है, अन्त रहित है और व्यापक भी नहीं है, इसलिए यह कहना कि आकाश अपने ही आधार में है क्योंकि वह अन्तरहित है, यह ठीक नहीं बैठता, यह शंका है । समाधान—देखो ! निरंशवादी यह कह रहे हैं कि एक परमाणु में चार चीजें रह रही है—रूप द्रव्य, रस द्रव्य, गंध द्रव्य और स्पर्श द्रव्य, तो भला बतलाओ कि ये चार चीजें जो एक जगह रह रही हैं सो वे क्या खूब चिपक कर रह रही हैं या बिखरी हुई ? अगर कहो कि वे मिलकर रह रहीं तो सर्वरूप से मिलकर रह रही हैं या एक हिस्से से मिलकर रह रहीं ? यदि कहो कि सर्वरूप से मिलकर रह रहीं तो वे चारों ही न ठहरेंगे । एक रह जायेंगे । और, एक हिस्से से मिलकर रहते हैं तो उनमें हिस्सा बन गए, अन्त हो गया । तो अन्तरहित है परमाणु इसका खण्डन हो गया, और अगर कहो कि वे बिखरे-बिखरे रह रहे हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो उन के बीच में कुछ नहीं है, यह ही तो अर्थ है बिखरे का। उसीका नाम तो आकाश है। अब व्यापक पदार्थ के बीच में जो अन्तराल है वह ही आकाश है। यह आकाश सब जगह है, जहाँ पदार्थ नहीं है वहाँ भी है, तो यों कहो कि सर्वव्यापक है, उसको अन्य आधार की जरुरत नहीं, तो अनवस्था दोष नहीं आता। तो यथा सम्भव सबमें घटित करें कि इसका आधार यह है,यों आधार बताकर वस्तु का परिचय कराया जाता है।

आकाश को स्वप्रतिष्ठ सिद्ध करने के लिए दिए गए अन्तरहित हेतु में आरेका व उसका समाधान— अधिकरण योग के प्रसंग में शंकाकार कह रहा है कि जो यह बताया गया कि आकाश अपने ही आश्रित है, क्योंकि वह चारों ओर से अन्तरहित है, और, चारों ओर से अन्तरहित है यह बात यों सिद्ध होती है कि वह समस्त अव्यापक पदार्थों के अभाव वाला है, अर्थात् उसमें अव्यापकता नहीं है। और अव्यापक स्वभाव का अभाव होकर भी एक द्रव्य है। तो इस तरह भी बात तो रुप परमाणु, रस परमाणु आदिक में भी हैं, जैसे रूप परमाणु एक ओर से अन्तरहित है, परमाणु का आदि मध्य अन्त नहीं होता। जैन सिद्धान्त में भी बताया गया कि जो सबसे छोटा है, जैसे कोई प्रदेश है तो प्रदेश का अगर आदि अन्त है तो वह एक न रहेगा। आदि अन्त मानने में कम से कम दो रहेंगे, पहला प्रदेश तो आदि रहा, अगला प्रदेश अन्त का रहा। तो जैसे एक ही प्रदेश हो तो उसमें आदि, मध्य अन्त नहीं इसी तरह केवल एक परमाणुओं में आदि अन्त नहीं होते और फिर जैसे सिद्धान्त में बताये गए परमाणु से भी बहुत सूक्ष्म है इन क्षणिकवादियों का माना गया परमाणु, जैसे परमाणु में रूप, रस, गंध स्पर्श बताए जाते हैं, लेकिन रूप खुद परमाणु है। रस, गंध, स्पर्श खुद एक-एक परमाणु है, वह तो चार परमाणुओं का पिण्ड है, तो देखो एक परमाणु आदि, मध्य, अन्त से रहित है और फिर भी व्यापक नहीं है, अपने आश्रित नहीं है। तो जो अन्तविहीन हो वह स्वाश्रित होता है, ऐसी युक्ति तो सही नहीं रही इसके समाधान में कहते हैं कि भाई क्षणिकवादियों के माने गए रूप परमाणु, रस परमाणु आदि सिद्ध ही नहीं होते। यदि वे पृथक-पृथक रूप, रस, आदि के अणु हैं तो यह बतलाओ कि ये चारों किसी जगह सिमिट कर रह रहे हैं या अन्तर सहित रहते हैं ? यदि कहो कि सिमिट कर रहते हैं तो यह बतलाओ कि सर्व देश से सिमिट कर रहते हैं या एक-एक हिस्से से छूकर रहते हैं, जैसे बहुत से चने रखे हैं तो वे चने सर्वदेश से सिमिट कर नहीं रह पाते, जैसे चने के भाग से छूकर रह रहे, दूसरे चने के एक के एक भाग को ही छुवा है ऐसे ही एक रूप, रस परमाणु परस्पर में सर्वदेश से रहता है या एक देश छूकर रहता है ? यदि कहो कि सर्वदेश छूकर रहता है तो सारा एक ही परमाणु कहलाया, फिर चार मत कहो और कहो कि एक देश से छूकर रहता है तो इसका स्वयं ही अर्थ हो गया कि परमाणु में कितने ही हिस्से हैं जिनमें से एक हिस्से को छूकर दूसरा रहा तो लो अब अन्तविहीन तो न रहा। जिसके कई भाग हों वह अन्तविहीन कैसी ? हाँ आकाश सर्वव्यापक है, अन्तविहीन है, लेकिन रूप आदि के परमाणु तो अव्यापक हैं,और मान लिया कि कुछ भागों को छुवे हुए हैं तो अब वह स्वाश्रित कैसे रह सकेगा ? इससे यह तो कहा न जा सकेगा कि रूपादिक परमाणु परस्पर में सिमिट कर रहते हैं अगर कहो कि व्यवधान देकर रहते हैं तो उन अनन्त परमाणुओं का व्यवधान देने वाला कौन है ? जैसे इस तख्त में और दूसरे तख्त में व्यवधान है तो व्यवधान में कोई चीज पड़ी हो या माना आकाश हो तब ही तो व्यवधान कहलाता है यदि रूपादिक परमाणुओं में व्यवधान है, अन्तर है तो वह व्यवधान करने वाला कुछ मानना ही तो चाहिए और वह माना जा सकता नहीं कोई मूर्त पदार्थ, तो यह आकाश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही तो है। इस तरह सिद्ध हुआ कि आकाश समस्त अव्यापक स्वभाव के अभाव स्वभाव वाला है और फिर है। अन्तविहीन, इसलिए वह स्वाश्रित।

आकाश की अनन्तानन्त प्रदेशिता व स्वप्रतिष्ठता—यह चर्चा इस प्रकरण को लेकर चली थी कि अधिकरण अनुयोग द्वारा पदार्थ का आधार बताना था। जैसे गुण का आधार है द्रव्य, द्रव्य का आधार है आकाश तो ऐसे कथन पर क्षणिकवादियों ने आपत्ति यह घटायी थी कि प्रत्येक पदार्थ अन्श अन्शमात्र है, निरंश है, उनका कोई दूसरा आधार नहीं बनता, और जब आधार नहीं बनता तो अधिकरण अनुयोग कहना व्यर्थ है। इस शंका के समाधान में यह चर्चा चल रही है कि निश्चय से तो प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूप के आधार में हैं और व्यवहारनय से सभी पदार्थों का आधार आकाश द्रव्य है, और आकाश अपने ही आश्रय में रहता है। आकाश से बढ़कर अधिक परिमाण वाला कोई दूसरा द्रव्य है नहीं, जिससे न किसी दूसरें को आधार कहा जा सके। अब दूसरी बात देखिये—आकाश द्रव्य अब तक ऐसा समझा गया कि व्यापक है, अखण्ड है और उसमें अनन्तानन्त प्रदेश हैं और वे प्रदेश परस्पर निरंतर रहते हैं, उनमें व्यवधान नहीं है। व्यवधान होता ही नहीं है। व्यवधान करने वाला कौन? क्या कहीं ऐसा है कि कुछ दूर आकाश चला गया और कुछ दूर आकाश न रहा (दूसरा पदार्थ आ गया) ऐसा व्यवधान कहीं नहीं है। कदाचित कोई ऐसा कहे कि आकाश में भींट उठा दी तो लो आकाश में भींट का व्यवधान तो पड़ गया। इस तरफ आकाश दूसरी तरफ बीच में भींट खड़ी है, तो भाई जहाँ भींट खड़ी है, वहाँ भी आकाश है। यदि आकाश न होता तो भींट का वहाँ ठहरना न बन सकता था। जहां अवगाह करता भींट? ता जहाँ ठोस कोई मूर्त पुदगल द्रव्य पड़ा हो वहां भी आकाश, जहाँ न हो वहाँ भी आकाश। तो आकाश सर्वव्यापक है और अखण्ड है। आकाश का खण्ड तब होता जब कोई पदार्थ व्यवधान दे। आकाश तो ठोस पदार्थ है। ठोस के मायने पिण्ड रूप ढेला रूप नहीं, किन्तु निरन्तर आकाश के प्रदेश ही प्रदेश हैं। उनके बीच को कोई स्थल ऐसा नहीं जहाँ आकाश का प्रदेश न रहता हो। आकाश तो अखंड है। अन्तररहित है, उनके प्रदेश में व्यवधान नहीं होता। तो अधिकरण अनुयोग में यह प्रसंग चल रहा है कि गुणों का आधार द्रव्य है। यह तो हुई अभिन्न आधार की बात। एक वस्तु में आधार आधेय निरखने की बात। अब इसके आगे भिन्न वस्तु की बात चलती है। उन द्रव्यों का आधार आकाश द्रव्य है। आकाश में समस्त अव्यापक द्रव्यों का अभाव है। त्रिकाल अभाव है।

परामर्श और व्यवहार दोनों दृष्टियों से आकाश की स्वप्रतिष्ठता—निश्चयनय से यहाँ देखा जाय तो चाहे कोई परमाणु हो अथवा आकाश हो, छोटे से छोटा द्रव्य हो और महान से महान द्रव्य हो, सभी अपने आपके स्वरूप में ठहरे रहते हैं। भले ही लोक रचना में ऐसी स्थिति पायी जाती है कि इस लोक के चारों ओर वातवलय हैं और वे भी तीन प्रकार के हैं घनवातवलय, घनोदधि वातबलय, तनुवातवलय और व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि सारा लोक बातवलय के आधार पर है लेकिन शुद्ध स्वरूप पर दृष्टि देने से यह स्पष्ट होगा कि परमाणु अपने आपके आधार से है, जीवद्रव्य अपने आपके आधार से है। वस्तु की सत्ता उस वस्तु के स्वभाव पर है। किसी अन्य द्रव्य पर नहीं है, यह लोक अनेक योजन तो ऊंचा है, चारों ओर से बहुत बड़े विस्तार वाला है। इस सारे लोक को वातवलय क्या टिका सकते, पर एक प्राकृतिक स्थिति है ऐसी कि इस लोक के चारों तरफ वातवलय है। निश्चय दृष्टि से तो किसी भी पदार्थ का कोई दूसरा आधार नहीं होता। सभी पदार्थ अपने आप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिष्ठित हैं, फिर भी व्यवहार दृष्टि से देखा जाय तो यह कहना ही होगा कि सभी पदार्थ आकाश की तरह स्वप्रतिष्ठ नहीं है। यद्यपि निश्चय दृष्टि से सभी द्रव्य स्वप्रतिष्ठ हैं, पर व्यवहार व परमार्थ से आकाश को ही स्वप्रतिष्ठ कहा जाएगा, अर्थात् आकाश ही ऐसा द्रव्य है जो अपने आपके आधार में रहता है अन्य द्रव्य में नहीं। तो निर्णय यह हुआ कि निश्चयनय से अनन्तानन्त जीव द्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य, ये प्रत्येक द्रव्य अपने आपके ही प्राण पर आधारित हैं, तो इन सबका आधार अपना अपना स्वरूप स्वातंत्र्य है, फिर भी व्यवहारनय से केवल आकाश को ही अपने आधार पर माना जाएगा, क्योंकि उससे बढ़कर अधिक परिमाण वाला कोई दूसरा द्रव्य नहीं है। यदि सभी पदार्थों को व्यवहार से भी स्वाश्रित स्वप्रतिष्ठित मान लिया जायेगा तो जैसे आकाश सर्वव्यापक है। तो सारे पदार्थ सर्वव्यापक बन जायेंगे। जैसे आकाश अमूर्त है, जैसे आकाश में दूसरों को अवगाह देने का गुण है, ये सारे अवकाश के गुण, सभी पदार्थों में आ पड़ेंगे। इससे ऐसा ही समझना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ निश्चय से तो अपने आप के आधार में है और व्यवहारनय से आकाश को छोड़कर सभी पदार्थ आकाश के आधार में हैं और आकाश अपने आपके आधार में है। कोई ऐसा भी कह सकता कि यदि सारे पदार्थों को स्वप्रतिष्ठ माना जाये तो आकाश की तरह व्यापक बन जाते हैं और सब पदार्थ व्यापक बन जाते हैं, तो बन जाने दो, इसमें क्या हानि है ? तो भाई हानि की बात तो अलग प्रसंग की है, पर यह तो अपनी प्रतीति की स्पष्ट बात है। प्रतीति में तो ऐसा नहीं आ रहा है कि सारे पदार्थ आकाश की तरह सर्वव्यापक हैं, प्रतीति का प्रत्यक्ष दर्शन का उलंघन करके तो पदार्थ के स्वरूप का निर्णय नहीं होता। प्रतीति के अनुसार पदार्थ के स्वरूप का निर्णय हुआ करता है। इस तरह प्रत्येक पदार्थ अपने आपके आधार में निश्चयतः है और व्यवहारतः आकाश के आधार में है और आकाश स्वयं अपने आपके आधार में है। यह तो संक्षेप से अधिकरण अनुयोग की बात कही और विस्तार से प्रत्येक पदार्थों में भेद परमाणु आदि के सभी को निरख-निरखकर उनके आधार की चर्चा की जानी चाहिए। इस तरह इस सूत्र में अधिकरण अनुयोग की बात समाप्त हुई।

स्थिति अनुयोग द्वारा विवक्षित वस्तु के कितने समल तक ठहरे रहने का परिचय – अब स्थिति अनुयोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। स्थिति अनुयोग से यह समझते हैं कि यह वस्तु कितने काल तक ठहरती है। वस्तु के बने रहने की मर्यादा का नाम स्थिति है। वस्तु तो अनादि निधन है, किन्तु वस्तु का जो परिणमन है विवक्षित परिणमन अनादि निधन नहीं। होता है, मिटता है तो उन परमाणुओं में एक स्थूलरूपता पाकर जो अनुभव में आया, ज्ञान में आया ऐसी परिणति के सम्बन्ध में स्थिति का प्रश्न और समाधान किया जाता है। स्थिति, मर्यादा अवस्था सब एकार्थक शब्द हैं। वस्तुएँ पर्यायें कब तक ठहरती हैं यह जानना स्थिति अनुयोग का प्रयोजन है। जैसे सम्यग्दर्शन की स्थिति कितनी है ? तो सम्यग्दर्शन तीन प्रकार के हैं –(१) औपशमिक, (२) क्षायिक और (३) क्षयोपशमिक। औपशमिक और क्षायोपशमिक तो संसारी जीवों में होता है और क्षायिक सम्यक्त्व संसारी जीवों भी पाया जाता और मुक्त जीवों में भी पाया जाता। तो उपशम सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति ६६ सागर है और संसार अवस्था तक क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति ३३ सागर है, पर मुक्त अवस्था की दृष्टि से क्षायिक सम्यक्त्व अनन्त काल तक रहेगा, ऐसे ही ज्ञान के सम्बन्ध में स्थिति का उत्तर लेना। जो ज्ञान हुआ, जिस ज्ञान में चल रहे हैं उस प्रसंग का वह ज्ञान,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस प्रसंग की ऐसी योग्यता जितना जो कुछ विषय बना हो उस विषय के सम्बन्ध में प्रश्न हुआ कि यह स्थिति कब तक होती है ? तो उसका जो उत्तर हुआ वही यहाँ स्थिति अनुयोग का प्रयोजन है। जैसे उस प्रकार के ज्ञान की योग्यता जीवन भी रहे, कुछ वर्ष रहे, अति बचपन में जो ज्ञान किया था उसका आज स्मरण नहीं है। बच्चा कैसे गर्भ से निकला ? कैसे बाहर रहा ? उसको वर्ष ६ महीना तक की स्थिति का भी बड़ा होने पर याद नहीं है। उस ज्ञान की इतनी ही स्थिति है। किसी ज्ञान की अगले भव तक भी स्थिति है। केवल ज्ञान की अनन्त काल तक स्थिति है। तो ऐसे इस ज्ञान परिणमन की स्थिति बताना, स्थिति से परिचय कराना यह स्थिति अनुयोग द्वार का प्रयोजन है, इसी प्रकार चारित्र की, जीवादिक ७ तत्त्वों की स्थिति बताना। यह सब स्थिति अनुयोग से समझ सकते हैं। जीव की स्थिति कितनी ? द्रव्य से अनादि अनन्त। पर्याय दृष्टि से भिन्न भिन्न पर्याय में रहने वाले जीव का भिन्न-भिन्न उत्तर होगा। तो इस तरह स्थिति द्वारा जीव का परिचय करना, कर्म द्वारा जीव का परिचय करना। कर्म बँधते हैं, कितने समय तक के लिये बँधते हैं। कितने समय तक वे कर्म टिकेंगे ? तो कोई कई सागरों तक रहे कोई कई कोड़ा कोड़ी सागरों तक रहे, ऐसे भिन्न-भिन्न उत्तर होते हैं। आश्रव की स्थिति जितने क्षण राग रहा अन्तर्मुहूर्त स्थिति। और, किसी के एक समय तक की भी स्थिति। जैसे किसी पुरुष का उपयोग माया कषाय में चल रहा और उसका मरण काल आया और जिस गति में जाता उस गति के प्रारम्भिक के अनुरूप उसके कषाय का उदय हो जाता है। उनमें कोई घबराहट या कोई उपद्रव उपसर्ग वाली कोई घटना आये उस समय इसके क्रोध उमड़ आता। तो मान कषाय करते हुये मानो मान एक ही समय हो पाया था और तुरन्त क्रोध कषाय का आविर्भाव हो गया तो लो यों मान कषाय एक समय को रह पाया। ऐसे ही माया, लोभ कषाय ये भी क्षण भर को ही रह सकते तो लो इनकी जघन्य स्थिति है। क्षण भर की स्थिति है। इस तरह तत्त्वों की मर्यादा बताना स्थिति अनुयोग का प्रयोजन है।

निरन्वयक्षयैकान्त में स्मृति परिचय पुण्य पाप आदि की असिद्धि का प्रसंग - यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि जगत में जितने भी पदार्थ हैं वे तो अत्यन्त अस्थिर हैं। एक समय ही उनकी स्थिति होती है, अगले समय में वे पदार्थ नहीं रहते हैं। तो जब एक क्षण के बाद दूसरे समय में भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है तो स्थिति नामक अनुयोग द्वार का बनाना बहुत असंगत है। समाधान में आचार्य सन्त कह रहे हैं कि क्षणिकवादियों का जो अभिप्राय है, निरन्वय क्षय का मन्तव्य है, याने उस द्रव्य का कोई अन्वय नहीं होता, उत्पन्न का दूसरे क्षण क्षय हो जाता है इसको कहते हैं निरन्वयक्षय एकान्त। इस अभिप्राय में तो सन्तान आदिक भी सिद्ध नहीं हो सकते। जब जीव एक क्षण को ही आया, दूसरे क्षण वह जीव न रहा भले ही अन्य जीव रहा तो भी वह तो अगले क्षण नहीं रहता। इस तरह एक क्षण में ठहरने वाले द्रव्य की मान्यता को निरन्वय क्षय कहते हैं। अन्वय तो नहीं रहा, पर्याय होते होते अभिन्न मान लिया। दूसरा हुआ वह भी यों ही हो गया। तो जब मूल में कोई अन्वय ही नहीं तो संतान भी किस तरह बन सके ? हालाकि ऐसे जटिल प्रश्न का उत्तर मूलभूत द्रव्य के मानने पर ही किया जा सकता है। जैसे एक आत्मा ने कुछ ज्ञान किया और उसके बाद दूसरा आत्मा जो हुआ उसने भी उसी प्रकार के ज्ञान में भाग लिया। तो पहले आत्मा के जाते हुये ज्ञान को द्वितीय क्षणवर्ती आत्मा ने जान क्यों लिया ? यों जान लिया कि उनका एक द्रव्य है। भिन्न-भिन्न द्रव्यों में

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहने वाली ज्ञान शक्तियों से एक सन्तान नहीं बन सकता। तो जो निरन्वय क्षय का एकान्त करता है न उनके सन्तान की सिद्धि है न पुण्य पाप आदिक धर्म कार्यों की सिद्धि है।

यदि क्षणिकवादी यह कहें कि सन्तान या पुण्य पाप आदिक इनकी सिद्धि नहीं होती है तो मत होने दो। यह सब तो कल्पना में माना जाता है। परमार्थतः तो सन्तान समुदाय साधर्म्य प्रयोग इन सबका अभाव है। इन्हें जीव कल्पना से मानता है, तो इसकी सिद्धि नहीं होती तो मत होने दो, यह तो क्षणिकवादियों को इष्ट ही है। तो समाधान देखिये– किसी के विषय में कल्पनायें जगें या जानकारी हो तो वहाँ ज्ञान तो हुआ ना। तो क्या शंकाकार की यह मंशा है कि वह तो एक ज्ञानाद्वैत-मात्र है। बस सब कुछ ज्ञान ही ज्ञान है। बाहर में पदार्थ कुछ नहीं। क्या ऐसा कल्पित परमार्थभूत ज्ञानाद्वैत है ? यदि उसे परमार्थभूत कह देते हो तो इसके मायने क्या यह हुआ कि मात्र ज्ञान ज्ञान ही तत्त्व है और जो जितने पदार्थ अनुभव में आ रहे हैं जैसे कि क्षणिकवादियों ने निरन्वय विनाशीक माना है, एक क्षण में ठहरने वाला माना है, ऐसा नाना पदार्थों का जो अनुभव हो रहा है तो इस अनुभव से सम्वेदन का भी परिचय बनाते हो ना ? तो जब निरन्वय विनाशीक एक क्षण रहने वाले नाना पदार्थों का जो अनुभव हो रहा और जिसे बता रहे रूप परमाणु आदिक तो ये भी फिर न रहें, क्योंकि कल्पना तो कल्पना ही है। परमार्थ तो न रहा अगर कहो कि यह अर्थ तो परमार्थ है, क्षण-स्थायी होता है, विनश्वर होता है, ऐसा पदार्थ जो देखा जा रहा है वह पदार्थ तो है। यदि ऐसा मानते हो याने कल्पना में आने से जैसे ये नाना पदार्थ अनुभव में आते हैं और असत्य नहीं है, वे सब सत्य हैं। तो इस तरह पुण्य पाप मोक्षमार्ग इसकी भी कल्पनामात्र ही क्यों कहते ? इसे भी सत्य कहो। तो इस चर्चा का फलित अर्थ यह है कि सन्तान आदिक ये सबके सब निरंकुश हैं। इसकी कोई एक सीमा न रही। कहाँ से पैदा हुआ ? किस तरह पैदा हुआ ? जब यह बात चित्त में न रही तो इस निरन्वय क्षय के एकान्त में एक कल्पना से भी आपका अभिमत न बन पायेगा और इसे बनाते हो अपना अभिमत तो पुण्य पाप और साधन ये सब भी मान लेना चाहिये ? अगर आत्मा में रहने वाले एकत्व का अपलाप किया जाये, याने न माना जाये तो वे सब निरंकुश हो जाने चाहिये, कोई जाने, कोई दूसरा स्मरण कर ले। तो जितना जो कुछ व्यवहार में सन्तान, समुदाय, साधर्म्य आदिक दिखता है वे सब काल्पनिक हो बैठेंगे। तो जैसे ये अनुभव में आने वाले पदार्थ हैं वैसे ही द्रव्यादिक तत्त्व भी वास्तविक हैं। मात्र कल्पना की चीज नहीं है।

बीज अंकुर आदि का दृष्टान्त देकर ध्रुवता व एकता के निषेध करने की आशंका और उसका समाधान—अब यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि देखो बीज और अंकुर ये न्यारी न्यारी चीजें हैं ना ? इसमें कोई एकत्व तो है नहीं। तो बीज अंकुर जैसी न्यारी न्यारी चीजों में एकत्व तो नहीं है। फिर भी बीज और अंकुर का सन्तान सिद्ध है। अंकुर के बाद बीज बना, बीज के बाद अंकुर बना। इस तरह यह चिरकाल तक चलता रहता है। तो देखो एकत्व नहीं है, फिर भी सन्तान सिद्ध हो गया बीज और अंकुर में। बीज जुदी चीज है, अंकुर जुदी चीज है, प्रकट आँखों से भी दिखती हैं ये भिन्न चीजें। तो जैसे बीज और अंकुर में एकत्व नहीं, फिर भी सन्तान सिद्ध हो जाता। इसी तरह एक देह में होने वाले सब जीवों में और उनके ज्ञान में एक शरीर में होने वाले अनेक ज्ञानों में एकत्व नहीं है, फिर भी सन्तान उनमें सिद्ध हो ही जाता है। और, जो यह स्कन्ध दीखता है उसमें अनन्त अणु द्रव्य हैं, इकट्ठे हैं फिर भी उनमें तिल आदिक इकट्ठे मिल जायें तो उनका समुदाय बनता है, वह भी कल्पना की चीज है। इन तिल आदिक में भी तो एकत्व नहीं है, फिर भी इनका समुदाय सिद्ध होता है। अनेक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गाय खड़ी हैं, किसी गाय का किसी दूसरी गाय के साथ एकत्व नहीं है, फिर भी उनमें साधर्म्य सिद्ध हो जाता है। ये गायें समान हैं तो एकत्व न होने पर भी व्यवहार बनता है, सन्तान आदिक सिद्ध होता है, और सब जगह यही बात घटायी जा सकती है फिर समुदाय की बात कहकर मूलभूत प्रसंग में आशंका क्यों की जा रही है ? ऐसी एक शंकाकार की आशंका है। उत्तर एकदम सीधा है कि बीज और अंकुर में जो शंकाकार कह रहा था कि इसमें एकत्व नहीं है फिर भी समता है, तो ऐसा कहना युक्त नहीं है। वहाँ भी किसी न किसी जाति का एकत्व है, अन्यथा सब तरह के बीज और सब तरह के अंकुर उनमें एक सन्तानपना सिद्ध हो बैठेगा। अथवा जितने भी दुनिया में तिल हैं उन सबका समुदाय हो जायेगा, पर क्यों नहीं होता ऐसा, यह ही तिल क्यों लड्डू में आया है ? जगत में और भी तिल है, या ऐसा भावात्मकज्ञान क्यों होता है ? अन्य प्रकार क्यों नहीं होता ? तो उनमें एक द्रव्यपना है ऐसी गड़बड़ी नहीं होती।

एक द्रव्य माने बिना अनुरूप पर्यायों की संगति का अभाव — यदि क्षणिकवादी यह कहें एक द्रव्यपने की बात कुछ नहीं है, एक शरीर में ज्ञान की परम्परा बनती चली जाती है और उनमें जो एक संतान बनी वह समीपता के कारण बनी, प्रत्यासत्ति विशेष के कारण भिन्न-भिन्न जीवों में एक संतान बनी, इसी प्रकार क्षेत्र की निकटता के समय भौतिक पदार्थों का समुदाय बन गया और रंग रूपादिक जो पुद्गल के भाव हैं उनकी प्रत्यासत्ति से एक समान भाव है, उस निकटता के कारण उनमें साधर्म्य सिद्ध हो जाता है, ऐसी शंका रखने वाले के प्रति सीधा ही उत्तर है कि आखिर प्रत्यासत्ति तो मान ली। अब बतलाओ वह प्रत्यासत्ति क्या है जिसके कारण संतान आदिक बन जाते हैं। वह प्रत्यासत्ति है एक द्रव्य में होना। तो एक द्रव्य ध्रुव द्रव्य माने बिना पर्याय संभव नहीं है। एकत्व माने बिना एकत्र क्रमशः इस इस तरह से पर्याय होते रहना सम्भव नहीं है इसलिये अन्वय का लोप करना युक्त नहीं है। एक दलील और देते हैं क्षणिकवादी कि संतान के नियम का कारण अव्यभिचारी कारणकार्य भाव है याने जहाँ कार्य कारण भाव सही मिल जाय वहाँ संतान चलता रहता है। यदि एक द्रव्य को न माना जाय और कार्य कारण भाव को ही संतति का नियम किया जाता है, तब क्षणिकवादियों के परम गुरु सुगत उनके ज्ञान का कारण संसारी जीवों का ज्ञान बन जायेगा, क्योंकि क्षणिकवाद सिद्धान्त में माना गया है कि सुगत को जो ज्ञान हुआ है वह समस्त संसारी जीवों के ज्ञान के विषय में हुआ है। तो जो विषय होता है वह कारण होता है और उसका विषय करके जो ज्ञान बनता है वह कार्य बनता है और कार्य कारण भाव से संतान का नियम बनाया। जहाँ कार्य कारण भाव हो वहाँ संतान की बात सिद्ध की जाती है। तो अब वहाँ यह अर्थ बनेगा कि संसारी जीवों का ज्ञान तो कारण है और सुगत का ज्ञान होता है वह कार्य है। तो जब कारण कार्य भाव मिल गया तो सब संसारी जीवों का ज्ञान और सुगत का ज्ञान यह एक संतान में हो जायेगा, इस कारण यह भी नहीं संगत है कि निर्दोष कार्यकारण भाव संतान के नियम का कारण होता है। संतान के नियम का कारण तो एक द्रव्य का होना है। एक पदार्थ है, उसमें प्रति समय पर्याय होती रहती है। तो उनकी पर्याय के होते रहने का नाम संतान है और ऐसा संतान वहाँ तब बना जबकि उनका आधार मूल एक द्रव्य है। यदि शंकाकार यह कहे कि कि संतान समझे जाने का कारण एक द्रव्य नहीं, किन्तु एक सामग्री की अधीनता है, अर्थात् जिसमें संतान समझे जा रहे हैं वे सब एक सामग्री द्वारा पैदा होते हैं, इस कारण उनमें संतान बन जाते हैं, समुदाय बन जाते हैं। तो ऐसे समुदाय के एकत्व बनने का कारण एक सामग्री की आधीनता नहीं है यदि समुदाय की एकता एक सामग्री के कारण बनी हो तो जैसे जब गीला ईंधन जलता है तो वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितनी बातें पैदा होती हैं, धुवाँ का विस्तार किसी किस्म का रूप ईंधन का विकार आदि के नाना समुदाय बनता है तो वह भी एकत्व को प्राप्त हो जाय, लेकिन ऐसा तो नहीं होता। जैसे किसी फल में रूप रस आदिक का एकत्व है ऐसे ही क्या अग्नि धुवाँ आदिक का एकत्व है। एक सामग्री के आधीन तो हुये सब। आग जली, धुवाँ निकला, मगर एकत्व तो न बन सका तो यह भी नहीं युक्ति संगत है कि एक सामग्री के अधीन है वह समुदाय एक द्रव्य माने बिना संगति नहीं बन सकती।

द्रव्य क्षेत्र काव्य भाव की प्रत्यासत्ति माने बिना संतानादि की असिद्धि— यहाँ चर्चा चल रही है स्थिति अनुयोग द्वारा तत्त्व का अधिगम करने की। स्थिति होती है तब जबकि एकत्व हो। एक हो पहले से हो, कुछ काल तक रहे, ऐसी पदार्थ की स्थिति बनती है। जो एक क्षण ही रहे, दूसरे क्षण न रहे, उसमें स्थिति का क्याप्रयोजन ! जो दार्शनिक वस्तुओं को केवल एक क्षणवर्ती मानते हैं उनकी यह स्थिति नहीं बनती। और जो स्थिति बने या न बने, जो लोग केवल एक क्षणवर्ती पदार्थ मानते हैं उनके यहाँ यह आपत्ति आती है कि आखिर उससे सजातीय ही क्यों उत्पन्न होता ? पहले के जाने हुए का स्मरण क्यों होता ? जब भिन्न-भिन्न आत्मा है, एक नहीं है तो दूसरे की सोची गई चीज का दूसरा स्मरण तो नहीं करता तो ऐसे ही यह एक शरीर में चल रहे अनन्त चेतन अणुओं को दूसरे का स्मरण क्यों होना चाहिये ? इसका उत्तर क्षणिक वादियों ने दिया था कि संतान के कारण यह सब बात निभ जायेगी। संतान समुदाय साधर्म्य और प्रेत्यभाव ये सब सम्वृत्ति से बनते हैं तो सम्वृत्ति से बने तो इसका अर्थ है कि वास्तव में तो न हुए और फिर संवृति (कल्पना) से भी कैसे बन सकता है ? इनमें से संतान के संबन्ध में पहले वर्णन आया। अब समुदाय की बात चल रही है कि यह जो अनेक परमाणुओं का पुञ्ज है, जो दृश्यमान है। अगर संबन्ध न हो और बहुत काल तक इनकी स्थिति न हो तो यह इस तरह प्रतीति में क्यों आ रहा ? इसका यह समुदाय बना कैसे ? तो इसके उत्तर में शंकाकार यदि यह कहे कि समुदाय होने का कारण है समानकालता सभी परमाणु उस एक ही काल में इकट्ठे हैं, उससे समुदाय की बात बनती है, तो विचार करने पर यह बात संगत नहीं बैठती। समुदाय का एकत्व बनने निमित्त समानकालता नहीं है उस काल में तो अनेक विभिन्न पदार्थ रहते हैं फिर इन परमाणुओं का ही क्यों एकत्व हुआ ? अन्य परमाणुओं का क्यों नहीं ? अन्य पदार्थों का क्यों नहीं ? तो समानकालता समुदाय के एकत्व का कारण नहीं कहा जा सकता। समुदाय का कारण है एक द्रव्याधारता। याने जहाँ एक द्रव्य अधिकरण हुआ तो उसमें होने वाले पर्यायों का जो एक समुदायपन है उसकी व्यवस्था बन जायेगी। अर्थात् एक द्रव्य के आधार में अनेक पर्यायें चल रही हैं, और ये तीन काल में अन्वय रूप से ठहरने वाले द्रव्य में है। यदि एक द्रव्य न माना जाय तो इन अणुओं का समूह रूप समुदाय भी नहीं बनता। जिन जिन परमाणुओं का समुदाय बनाया जा रहा परमाणुओं का मूल्य द्रव्य एक तो है। ऐसे सभी परमाणु हैं। अब यहाँ प्रसंगवश उनका समुदाय बन गया। यदि एक द्रव्य अधिकरण न माना जाय तो कोई पर्याय अथवा अवस्था सिद्ध नहीं होती है। तो एक द्रव्य का आधार है पर्यायों के बनने का कारण। तो यह सब बनेगा अन्वयी द्रव्य के होने पर। अर्थात् जो तीन काल में रहता हो ऐसा द्रव्य है तब ही तो ये पर्यायें चलती हैं। और कहीं इन पर्यायों का एक जोड़ बनता है। जैसे तिल आदिक अथवा रूपादिक का समुदाय बने तो उनकी एकता का नियम भी साधर्म्य से होता है। तो संतान समुदाय व साधर्म्य की सिद्धि ध्रुव द्रव्य बिना नहीं होती।

एक द्रव्य भी माने बिना संतान व स्थिति की असंभवता— यहाँ निर्देश स्वामित्व साधन

http://sahjanandvarnishastra.org/

अधिकरण स्थिति विधान अनुयोग द्वारा वस्तु का परिचय होता है । सम्यग दर्शन यह है यों निर्देश हो गया । सम्यगदर्शन के स्वामी ये जीव होते हैं यह स्वामित्व हुआ । सम्यग्दर्शन इस साधन से उत्पन्न होता है यह साधन हुआ । सम्यग्दर्शन का आधार यह है कहाँ होता है, किस क्षेत्र में होता है, किस आत्मा में होता है यह अधिकरण हुआ और सम्यग्दर्शन की स्थिति कितनी है ? औपशमिक हो तो कितने समय तक हो, क्षायोपशमिक हो तो कितने समय तक रहे, ऐसा बताना यह स्थिति है। तो यहाँ स्थिति अनुयोग की बात चल रही है । तो स्थिति बनती है तब जबकि कोई पदार्थ देर तक रहे। यदि एक यदि एक समय को ही रहता है कोई तो उसकी स्थिति क्या ? तो जो दार्शनिक केवल एक समय के लिए ही वस्तु की सत्ता मानते हैं उनके यहाँ न व्यवहार चल सकता न मोक्ष मार्ग चल सकता पुण्य करे कोई, फल पाएगा कोई क्योंकि जीव तो नाना बन रहे हैं। पाप करे कोई, फल पाएगा कोई। भला जैसे कोई लड़का प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो, अब इनाम वितरण हो रहा है तो इनाम लेने के लिए दूसरा लड़का उठे और हाथ बढ़ाए तो वह कितनी भद्दी बात है। वह उस लड़के का कितना नीचपन है, चाहे वह फेल (असफल) हो गया हो, बुद्धिहीन हो, पर इनाम के लिए हाथ बढ़ा दे, तो ऐसी ही क्षणिकवादियों की विडम्बना चल रही है । पुण्य करे कोई, फल पायगा कोई, परन्तु यों तो व्यवस्था नहीं है । जीव एक है, उसकी अवस्थायें होती हैं । तो स्थिति बनती है एकत्व स्वीकार करने करने पर । तो इस एकत्व को क्षणिकवादी कहते हैं कि यह है कल्पना से एकत्व। वास्तव में तो ये भिन्न-भिन्न जीव हैं । जो एक शरीर में लगातार प्रति सेकेण्ड प्रति समय उत्पन्न होता रहता है, उनमें एक कल्पना की है तो संतान बन गया ।

ध्रुव द्रव्य माने बिना समुदाय व प्रेत्यभाव की असिद्धि—जगत में जितने पदार्थ दिखते हैं इनको तो जैन शासन स्कन्ध कहता है। इन सर्व पदार्थों का एक जगह समुदाय बन गया, लेकिन क्षणिकवादी यह कहते हैं कि यह तो केवल एक कल्पना से दिख रहा है इतना लम्बा, चौड़ा, मोटा काठ पर वास्तव में तो एक-एक अणु ही तत्त्व है, और प्रत्येक अणु में अपना-अपना परिणमन चलता है ? इसे कहते हैं समुदाय । तो प्रश्न होता है कि इस समुदाय में एकता कैसे आयी ? तो कोई दार्शनिक यह उत्तर दें कि कारण है समान हेतुकता, इसलिये एकता आयी। जैसे चौकी में अनन्त परमाणु हैं। यह अनन्त परमाणुओं का मिलकर एक समुदाय बना इसका कारण है समान हेतुकता अर्थात् जितने परमाणुओं का मिलकर एक पिण्ड बना, सबमें कारण है समान हेतु ? उत्तर देते हैं कि यह भी बात ही बात है । कभी विषम हेतुओं से नाना चीजें बनीं और वे रहें समान भिन्न-भिन्न और कभी भिन्न-भिन्न कारणों से चीजें बनें और कहो उनमें हो जाये समानता। जैसे चाँदी और सीप, चाँदी बनती है धातु से और सीप बनती है पानी से । पानी में सीप जाति के जीव होते हैं उनसे सीप बनती । तो सीप और चाँदी के कारण तो बिल्कुल भिन्न हैं, कहाँ पृथ्वी और कहाँ पानी ? लेकिन रूप रंग एक सा होता है । जैसा चाँदी का रूप है वैसा सीप का रूप है, तो साधर्म्य तो बन गया, मायने एक से रूपादिक तो बन गये और कारण हैं जुदे-जुदे और कहीं कारण एक से होते हैं और कहीं उनमें धर्म एक समान नहीं होते । जैसे आग लगी काठ में तो धुआँ होता है काला, ज्वाला होती है लाल और हेतु एक समान है, पर भिन्न-भिन्न बात बन गई तो ये पदार्थ जो ऐसे इकट्ठे बन गये उनका कारण समान हेतुकता नहीं, किन्तु एकत्व कारण है, द्रव्य कारण है। जितने इसमें परमाणु हैं उतने ही उसमें द्रव्य हैं, फिर उनकी पर्यायें होती हैं उनका यह समुदाय बना, तब ही स्थिति अनुयोग से चीजों का परिचय चल सकता है;

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और फिर समान परिणाम तो तब ही होते जबकि द्रव्य नाना हों। अगर एक हो द्रव्य है तो समानता की गुंजाइश है ? तो इसमें एक द्रव्य माना, उसकी पर्याय चलती है, ऐसा मानने पर जो एक-एक समय की बात है वही पूरा द्रव्य है, ऐसा असत्य मत समझें। द्रव्य है एक, उसकी पर्याय चलती हैं अनेक। अगर सदा काल बहुत समय रहने वाला द्रव्य न माना जाये तो पुनर्जन्म भी सिद्ध नहीं होता पुनर्जन्म का तो अर्थ यह है कि वही पहले कुछ और था, अब कुछ और बन गया। मरकर कुछ होना इसे कहते हैं पुनर्जन्म। तो एक है कोई तब ही तो पुनर्जन्म है। अगर एक-एक समय में आत्मा रहता है तो उसके पुनर्जन्म की जरूरत क्या ? हुआ और मिट गया तो पुनर्जन्म तब ही होता है जब कि वास्तविक द्रव्य एक हो। सन्तान का पुनर्जन्म नहीं होता। सन्तान के मायने एक लगार, किन्तु द्रव्य का भवों में पुनर्जन्म है। सन्तान को एक द्रव्य नहीं बोल सकते एक द्रव्य हो उसी को ही एक द्रव्य बोलेंगे, ऐसा एक जीव का पुनर्जन्म सिद्ध होता है। वही जीव पहले कुछ और, अब कुछ और बन गया। तो एक द्रव्य माने बिना व्यवहार नहीं बनता। फिर एक द्रव्य न माने तो पुण्य पाप के कर्त्तव्य नहीं बनते। जिसने किया उसका नाश हो गया, जिसने नहीं किया उसको पुण्य वैभव मिल गया। तो एक द्रव्य माने बिना न व्यवहार है न धर्म है। तो सन्तान का भी अर्थ एक द्रव्य है। एक चीज है, उसकी समय-समय पर पर्यायें होती हैं। पूर्व पर्याय उत्तर पर्याय का कारण है। और इस तरह इसमें परणति चलती रहती है। और भी सुनो—बिना हेतु के उत्पन्न होने वाली वस्तु का एक समय ठहरना माना क्षणिकवाद में, कारण कुछ नहीं कहा जाता। एक समय में जो वस्तु उत्पन्न हुई वह अपने आप हो गई, उसका कारण नहीं माना जाता। तो जैसे बिना कारण उत्पन्न होने वाली चीज से एक समय की स्थिति मानते हो ऐसे ही अहेतुक हुये उस पदार्थ को अनेक समय की स्थिति में भी मान लो। क्या हर्ज है ? और देखा भी जाता है कि कई पदार्थ बहुत समय तक ठहरते हैं। तो जो प्रतीति में आ रहा उसके खिलाफ चल रहे और जो बुद्धि में भी नहीं बैठ सकता उसकी हठकर रहे।

प्रतीति सिद्ध व युक्ति सिद्ध वस्तु के स्वरूप की चर्चा—जैन दर्शन में यह ही एक बड़ी परोपकार शीलता है कि जैसे कोई सोच सकता जैसे कि सामने पदार्थ पड़ा उस तरह से परिचय करने के लिये जैन शासन वर्णन करता है। वह स्वरूप को तोड़ मरोड़कर अपनी इच्छानुसार नहीं कहता। इसकी स्पष्ट घोषणा है, जो वस्तु में हो उसको ही धर्म कहते हैं। जो पदार्थ में हो, वही आगम में लिखा जाता है। तो प्रतीति के विरुद्ध मत चलें। जगत में अनन्तानन्त जीव हैं। सबकी अपनी-अपनी पर्याय हैं। किसी के परिणमन को कोई दूसरा करता नहीं। खुद ही अपने आपकी संतति में कार्य करता चला जाता है। यह तो है स्वरूप वास्तविकता और उसमें एक क्षण रहना मानना या सदा काल अपरिणामी रहकर मानना यह सब प्रतीति में आने वाली बात नहीं है यहाँ क्षणिकवादियों को यह समझाया जा रहा है कि तुम एक क्षण रहने की ही बात क्यों मानते ? दो क्षण रहने का मान लो। तो इसमें आपत्ति देते हैं क्षणिकवादी कि अगर पदार्थ में दो समय रहने की आदत बन जाये तो पदार्थ दो समय रह गया। पदार्थ में दो समय रहने की आदत मान ली। अब दूसरे समय जब पदार्थ आया तो वहाँ भी दो समय रहने की आदत चलेगी। फिर दो समय हो गये, फिर अगला समय आया तो उसमें भी दो समय रहने की आदत रह गई तो चीज कभी नष्ट नहीं हो सकती। यहाँ क्षणिकवादी दोष दे रहे हैं कि यदि पदार्थ को दो समय तक का ठहरना मान लेंगे तो फिर हर समय वह दो समय को ठहरेगा, इन दो ने अनन्त काल तक ठहरा दिया, कभी उसका विनाश ही न होगा। समाधान पहले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समय में तो दूसरे समय की अपेक्षा से दो समय हैं, और दूसरे समय में पहले समय की अपेक्षा से दो समय हैं, कोई पदार्थ तीन समय रहता तो उनमें तीन अपेक्षायें लग जायेंगी। इस तरह दोष नहीं आता। अब क्षणिकवादियों का यह कहना है कि फिर इनमें स्वभाव भेद हो गया। पहले समय में दो समय मानने से दूसरे की अपेक्षा हुई, दूसरे समय में दो समय मानने से प्रथम समय की अपेक्षा हो गई और स्वभाव भेद बना तो उसे जुदी-जुदी चीज कहो। जिसके स्वभाव में भेद है – वह चीज जुदी जुदी कहलाती है, तब एक कहाँ रहा ? तो यह सोचना भी उनका युक्ति संगत नहीं है। जैसे कि तुम सोचते हो कि पदार्थ एक समय रहता है, अगले समय नहीं रहता, इसको तो जैन सिद्धान्त ने ऋजुसूत्रनय बताया है, ऋजुसूत्रनय का विषय यह है कि वह एक समय रह गया, अगले समय से या पिछले समय से उसका कोई वास्ता नहीं है। तो ऋजुसूत्रनय से प्रतिक्षण स्वभाव में भेद है तो वह पर्याय जुदी-जुदी है, उसे कहते कि वह न किसी हेतु से हुआ और जब होता है तब होता है। ये सब बातें किसी एक नय से हैं। सभी नयों से सभी तरह से ऐसी बातें मान लें तो उसमें न व्यवहार है और न उसमें सच्चाई रहती है ; तो इस तरह वस्तु एक है, वह सदा रहने वाला है। उसमें जो पर्यायें जगती हैं वे पर्यायें विनश्वर हैं। एक के बाद दूसरी होती हैं। और इस तरह से वे सब क्षणिक हैं।

नयों से किये गये वस्तु परिचय से प्राप्तव्य शिक्षा – अब हमने जब आत्मा को जाना कि मैं आत्मा नित्य हूँ और अनित्य हूँ, नित्य तो हूँ द्रव्य दृष्टि से और अनित्य हूँ पर्याय दृष्टि से। पर्याय चूँकि सदा नहीं रहती इस कारण तो जीव अनित्य और द्रव्य स्वरूप प्रकृति यह सदाकाल रहती है। इस दृष्टि से मैं नित्य हूँ, तो ऐसा नित्यपना अनित्यपना जानकर उससे हमें शिक्षा क्या मिलती कि देखो भाई तुम नित्य हो, सदा काल रहोगे, कभी तुम मिटते नहीं हो तो फिकर जो करें आगे की। रहना तो मुझे पड़ेगा ही अनन्त काल तक। अब मेरा वह काल कैसे सही गुजरे, ऐसा एक अपने को चिन्तन करना चाहिये, उसका उपाय बनाना चाहिये। तो आपको नित्य समझने से यह लाभ हुआ और अनित्य समझने से क्या लाभ होता ? जब हमने अपनी परिणति को अनित्य जाना, यह होकर मिट जाती है, उससे हमको यह निर्णय हो गया कि हम अभी संसार दशा में हैं, मोह दशा में हैं, पर हमारा संसार या मोह ये नियम से मिटेंगे और मुझे मिटाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञानी जीवों को जो भी बात कोई बताये उसी से वे अपने हित की शिक्षा ले लेते हैं। तो नित्य मानने से हमको यह बात चित्त में आना चाहिये कि हम सदा रहने वाले पदार्थ हैं, हम ऐसा कोई गलत काम न करें कि हमारा भविष्य बिगड़े। हम सही काम करें जिससे कि हमारा भविष्य सुधरे। अनित्य समझ लेने से यह विश्वास होना चाहिये कि मैं इस समय कितना ही खोटा हूँ, कितना ही मोह राग में बस रहा हूँ, लेकिन यह सबका सब पूरा जल्दी मिट जाने वाला है। तो मैं इस समय अज्ञान अवस्था में हूँ, पर उस अज्ञान अवस्था से हटकर ज्ञान अवस्था में आ सकता हूँ ऐसा अनित्य मानने से हम अपने में शिक्षा ग्रहण करें। तो यहाँ बताया जा रहा कि स्थिति अनुयोग द्वारा पदार्थ का परिचय होता है।

अनुयोगों द्वारा तत्त्व परिचय की रीति किसी मनुष्य को देखा तो उसके बारे में पूरी जानकारी करना है तो इतनी बातें सोचते हैं कि यह कौन है, यह किसका मालिक है, इसका कौन मालिक है, यह किस स्थाव में रहता है यह कहाँ रहता है ? कब से रह रहा है ? इतनी बातें जब हम जानते हैं तब हमें उसका ज्ञान होता है। यदि ऐसे ही जीवादिक ७ तत्त्वों के बारे में इन ६ बातों को समझें तो उसका हमें परिचय होता है। ठीक परिचय होने से यदि वह छोड़ने योग्य चीज है तो उसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़ने का रास्ता मिलता, ग्रहण करने योग्य चीज है तो उसको ग्रहण करने का रास्ता मिलता। जैसे आश्रव, यह रागादिक विकारों से उत्पन्न होता है, यह दुःखदायी है, इसका स्वामी जीव नहीं है, इसका स्वामी कर्म है, अथवा कर्म भी नहीं है, जिसकी जो परिणति है वह उसका स्वामी है, ये रागादिक विकार मेरे में जमकर नहीं रह सकते, क्योंकि ये नैमित्तक हैं। जब इतना बोध होता है क्रोधादिक कषायों के बारे में तो उसे यह छोड़ सकता है। तो इस अनुयोग द्वारा तत्व का परिचय करने की बात बहुत आवश्यक है। यद्यपि प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र ने एक बार जता दिया कि प्रमाण और नयों से जीवादिक ७ तत्वों की जानकारी होती है। मगर इस सूत्र ने ज्ञानात्मक उपायों की ही चर्चा की, अर्थात् ज्ञान के द्वारा जानकारी होती है। यह नहीं बताया कि कैसे कैसेपदार्थ की जानकारी होती है जिन पदार्थों से जाना जाता है वे पदार्थ किस किस शक्ल में रहते हैं यह बात प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र में नहीं आयी। इसमें तो इतना ही आया कि प्रमाण और नयों के द्वारा ज्ञान होता है। तो प्रमाण भी ज्ञान है, नय भी ज्ञान है, ज्ञान से ज्ञान होता है। इतना ही तो अर्थ हुआ। मगर जिन पदार्थों को समझना है वे पदार्थ कैसे होते हैं और किस रीति में समझे जाते हैं। सब बात न आ पायी थी तो इसी बात को जताने के लिए निर्देश स्वामित्व आदिक सूत्र की रचना हुई है। अब देखो जो भी विद्वान कोई सूत्र बनाने चले या पद्य बनाने चले तो वह एक सामान्य भावना को लेकर चलता है और जल्दी जल्दी बनाते जाते हैं। मगर जो पुण्यवान जीव हैं, जो वास्तविक ज्ञानवान जीव हैं, उसकी होती तो है सामान्य रचना, लेकिन अपने आप ही उस रचना में बड़े मर्म छिपे हुये रहते हैं। जहाँ लोगों से सूत्रकार जानना चाहें तो जान सकते हैं अथवा टीकाकर जानना चाहें तो जान सकता है।

स्वयं का सत्य महत्त्व समझने की आवश्यकता— अपने बारे में यह बात निर्णय में सोचें कि मेरा काम मेरे से ही बनेगा या मेरा काम कोई दूसरा कर देगा? मेरा काम क्या? शान्ति होना, धैर्य रहना, ज्ञान सही रहना, यह ही तो मेरा काम है। तो मेरा यह काम कोई कर सकता क्या? या मुझको खुद ही करना पड़ेगा? दूसरा कोई नहीं कर सकता। चाहे कितना ही कोई आसीस दे, चाहे कितनी ही कोई सेवा करे, चाहे प्रभु भी हो, पर मेरी शान्ति मेरे धैर्य को कोई दूसरा न कर देगा हाँ इतनी बात अवश्य है कि प्रभु का ध्यान करने से मन में पवित्रता बढ़ती है, रास्ता मिलता है, उत्साह जगता हैं, धर्म में लगता है, लेकिन कोई सीधा मेरे को तार दे ऐसा कभी सम्भव नहीं। तो जब मेरा काम मेरे को ही करना है, बिल्कुल निश्चित बात है, चाहे इस भव में करलें चाहे इस भव को बेकार गवाँ कर कभी आगे करना, करना होगा खुद को। अगर यह बात धुन में है कि चलो यह भव न सही आगे करेंगे, एक भव बेकार ही जाने दो, आगे सम्हाल लेंगे, तो यह भी तो देखो कि अनन्त भव बेकार तो खोये। अनन्त भव बेकार गए तो अब इस भव को बेकार मत गवाँओ बाह्य पदार्थों में ममता करना बिल्कुल बेकार जींवन गवाँना है। ममता से खुद दुःख भोग रहे हैं वर्तमान में उस दुःख से छूटने का उपाय ममता ही सूझती है। जगत में कौन रहा यहाँ एक प्रभु बनकर। स्थायी रहकर ? किसकी जमीन, किसका वैभव, किसका कुटुम्ब यहाँ रहा? पाण्डवों के वंश का, रामचन्द्र जी के वश का मकान घर कुटुम्ब अब है क्या? यहाँ? दिखता है क्या? बड़ों बड़ों का पता न रहा यहाँ? तो हम छोटे क्या विशेष तर्कण बनाये? अपने उपयोग की बात सम्हालिए मेरा उपयोग केवल एक मेरे में हो। उसमें दूसरे की जरुरत नहीं। भीड़ की जरुरत नहीं। केवल ज्ञान मात्र देखें, परम सतोष होगा यह अन्य प्रकार से आ न सकेगा। खुद खुद के लिए सब कुछ है। तो अपने लिए खुद का महत्त्व दें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और स्वयं जैसे अपने आप में महिमा बढ़े ऐसा ज्ञान प्रकाश लावें। तो उस ही ज्ञान प्रकाश की चर्चा चल रही है कि देखो जब तक आत्मा का हर दृष्टिकोण से ज्ञान न कर लेंगे तब तक हमें सही मार्ग न मिलेगा शान्ति पाने के लिए वह हर दृष्टि क्या है तो इस सूत्र में बताया जा रहा निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान।

विधान अनुयोग द्वारा तत्त्व परिचय कराने का प्रकरण—किसी चीज का सही जानना ६ अनुयोगों से होता है। जैसे यह चौकी है। निर्देश हो गया। यह चौकी मन्दिर की है, अथवा काठ की है यह स्वामित्व हो गया, यह चौकी आम के तख्ते से बनी है यह साधन हो गया। यह चौकी मन्दिर में है अथवा चौकी में ही है अधिकरण हो गया। यह चौकी तीन वर्ष तक टिकेगी यह स्थिति हो गई, और ऐसी चौकियाँ इतने ढंग की चौकी होती हैं यह ध्यान में आया, विधान हो गया तो यहाँ ५ अनुयोगों का वर्णन करके छटे अनुयोग की बात कही जा रही है। विधान से वस्तु का ज्ञान होता है। जैसे जीव का ज्ञ न करना। तो जीव के भेद मुक्त व संसारी। संसारी के भेद त्रस, स्थावर, त्रस के भेद, स्थावर के भेद, जब ये भेद प्रभेद समझ में आते हैं तो जीव के बारे में हमारा भी परिचय ही तो बढ़ता है। सबके साथ कर्म लगे हैं सबका उदय न्यारा न्यारा। अपने अपने उदयानुसार सब अपना सुख दुःख भोगते हैं तो यह विधान प्रभार जब जाना गया तब हम बहुत परिचय पा लेते हैं। तो विधान अनुयोग द्वारा तत्त्व का परिचय करना चाहिये। जैसे सम्यक्त्व जान लिया, अब विधान देखें। सम्यक्त्व तीन प्रकार का है – (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक उनमें भी भेद करके आगे बढ़ें, उनका स्वरूप सोचें, लो सम्यक्त्व के बारे में खासा परिचय बन जाता है। तो विधान की दृष्टि से तत्त्वों का अधिगम होता है। यह बात छठे अनुयोग में कही जा रही है।

विभिन्न पदार्थ होने से पदार्थ परिचय में विधान अनुयोग की उपयोगिता—अब इस समय कुछ विशेष ध्यान पूर्वक सुनो—अनुयोग ने तो यह बताया कि चीजों के भेद प्रभेद करके समझा दें—जीव इतनी तरह के। ज्ञान हो गया, पर यह शंकाकार यहाँ यह कहता है कि भेद प्रभेद कुछ नहीं है। जितना भी जगत है वह सब एक है। यहाँ दूसरी चीज ही नहीं है, जब दूसरी बात ही नहीं तो भेद क्या होंगे? सारा विश्व एक है क्योंकि सत्त्व के आकार से विशेषता किसी में न पायी जाती। तुम बोलते जावो—चौकी है, आखिर है तो आ ही गया, भींट है, चटाई है, है में क्या अन्तर आया? मकान है, मनुष्य है. में कोई भेद होता कि यह "है" पीला है और यह "है" लाल है। 'है' में कोई भेद है क्या? रंग का अथवा आकार का? 'है' में न रंग का भेद है। है में जब कोई भेद नहीं, अस्तित्व सबका जब सामान्य है तो सारा जगत एक है, यहाँ दूसरी कोई चीज है ही नहीं, इस दर्शन की प्रसिद्ध है ब्रह्मा—द्वैतवाद के नाम से। कहते हैं ना सब कुछ एक ब्रह्म है। दूसरा कुछ नहीं है। तो जब सारा विश्व ब्रह्म है, एक है तो विधान तो नहीं बनता, विधान के मायने भेद, भेद तो नहीं होते। तब विधान अनुयोग गलत है, उससे अधिगम कराने की बात गलत है तो सूत्र में विधान क्यों रखा? विधान को हटाओ इस प्रकार एक शंकाकार अपनी बात रख रहा है। शंका तो समझे। सारा विश्व एक ब्रह्मरूप है। ऐसा कहने वाले अनेक लोग मिलेंगे। किसी से भी बात करो। बाहर किसी अजैन सिद्धान्त वाले से बात करो तो कहते हैं कि सारा विश्व एक ब्रह्मरूप है। कहने को तो सब कह डाला, पर उनसे पूछो कि तुम्हारे दिल में यह बात पक्की जम गई, क्या कि सारा विश्व एक ब्रह्म है? तो वे अगर ईमानदारी से बोलेंगे तो यह कहना पड़ेगा कि भाई अनुभव में तो नहीं जची। ये सब आँखों से जो दिख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहे हैं भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थ, कोई जीव है, कोई अजीव है, तो ये जो जानने में आ रहे हैं इनको कैसे मेटा जाय ? भले ही बहुत कुछ समझाए कोई कि देखो भाई स्वप्न में भी तो दिखती हैं नाना बातें मगर वहाँ है तो कुछ नहीं। स्वप्न में पहाड़ भी दिखा, नदी भी दिखी, आदमी भी दिखे, राजा भी बन गये पर है कुछ नहीं। तो जैसे स्वप्न में नानापन दिखता है और है वहाँ कुछ नहीं, ऐसे ही यहाँ मोह में नानापन देखते हैं किन्तु कुछ नहीं दृष्टान्त से भी समझिए—जो लोग यह कहते, मानते कि है कुछ नहीं सो समाधान में सुनिए स्वप्न जैसी बात यहाँ नहीं है, सब कुछ बराबर है। ज्ञान की बात तो यह है कि जो कुछ तुम्हें दिख रहा है, इस सबको तुम माया समझो। माया के मायने क्षण भंगुर पर्याय परिणमन समझें, पर है नहीं यह सब कुछ ऐसा नहीं है, और जो दिख रहा है इसको दिल में बसाने से आत्मा का हित नहीं है। इसको आश्रय लेने से आत्मा का कल्याण नहीं है। यह तो ठीक है, किन्तु यदि पर पदार्थ है ही नहीं तो बताओ क्लेश कैसे हुआ।

ममता की विडम्बना—ममता करके मरे जाए, मरण भी कर जाएं, सार क्या पायगा यह जीव ? छोड़कर तो जाना ही होगा। जायगा तो अकेला ही। उस अकेले जीव का यहाँ के भव के लोग क्या मदद करेंगे ? अरे यहाँ ही मदद नहीं कर सकते तो फिर मरे के बाद कौन क्या देख पाएगा ? यहाँ माया का आश्रय करना, यहाँ विचार बनाना, यह बुद्धिमानी नहीं है। यह जीवन खोना है। तृष्णा ऐसी विचित्र चीज है कि धर्म भी करते जायें मगर तृष्णा का भीतर में संस्कार है तो धर्म प्रकट नहीं हो पाता। एक कथा प्रसिद्ध है कि किसी नगर में किसी सेठ ने एक मुनिराज का चातुर्मास कराया एक पेड़ के नीचे चातुर्मास किया तो सेठ ने हीरा जवाहरात एक घड़े में भर कर पेड़ के नीचे गाड़ दिया कोई समय पाकर कि लड़का भी न देखे, गाड़ दिया। मगर किसी तरह से उसको लड़के ने गाड़ते हुए देख लिया। तो मौका पाकर वह लड़का वहाँ से हंडा खोद कर ले आया। आखिर मुनिराज चर्या को जाते थे, सेठ भी जाता था। खबर किसी को नहीं। जब चतुर्मास समाप्त हो गया, मुनिराज विहार कर गये, उसके बाद जब सेठ ने हंडा खोदा तो नदारत। वहाँ सेठ को एकदम मुनिराज पर संदेह हो गया। अरे चार महीने तो हमने मुनिराज की सेवा की और महाराज ने हमारा करोड़ों का धन चुरा लिया। मन में बात जम गई। आखिर गया सेठ मुनिराज के पास। वहाँ परस्पर कथानक हुए। उस समय वह सेठ का कपूत भी खड़ा हुआ सुन रहा था। उन कथानकों से स्पष्ट जाहिर हो रहा था कि सेठ जी को मुनिराज के ऊपर संदेह हो गया है तो वपाँ उस कपूत को बड़ा बैराग्य जगा और कहा—पिता जी यह चाभी लीजिए, आपका सारा धन घर में रखा है, हम खोदकर ले गए थे तुम उसे चिपकाकर लेकर बैठो। हम तो यहाँ दीक्षा ले लेंगे। हमें संसार से अब कुछ प्रयोजन नहीं।

ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की रूचि में धर्मपालन की मुद्रा—धर्म करने के प्रसंग में हमें ५ मिनट भी लगें, दो मिनट भी लगें, इतने समय तो सबका ख्याल भुलाकर, केवल ज्ञान मात्र आत्मा का ध्यान रखकर धर्म का लाभ तो लूटना चाहिए, नहीं तो घर के कामों से भी गए, और मन्दिर में रहकर धर्म का काम भी न हुआ। और ऐसा धर्म लूटना तब ही उठाया जा सकता जब ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्व की रूचि जग जाय। तो भाई इस बाहरी मायाजाल से मोह त्यागेंगे और इस माया के अन्दर ही बसा हुआ जो परमार्थ भाव है उसका ज्ञान करें, उसका सहारा लें। जीव के जितने प्रकार हैं, दशायें हैं सभी समय परमार्थ ज्ञान स्वभाव है, चैतन्य स्वभाव है वही परम गुरु है, वही परम देवता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, उसका आश्रय करें। यह तो है आत्महित का मार्ग। और यों कहना कि जगत में कुछ भी नहीं है, सब जुदे हैं, यह चीज ही नहीं है, एक ब्रह्म मात्र है, जिस कोई परिणति भी नहीं है, जिसका कोई व्यक्त रूप भी नहीं है, तो ऐसी अटपटी बात रखने से आत्महित न होगा। वस्तु मूल में सभी एक एक है और अवस्था के भेद से उनमें नाना प्रकार होते हैं। तो उन नाना अवस्थाओं को मना तो करें मत, वे हैं पर उन अवस्थाओं को शरण मत माने। उन अवस्थाओं के अन्दर प्रकाशमान जो एक शाश्वत स्वभाव है उस पर दृष्टि दें। यह है मेरा हितू, मेरे में बसने वाला शाश्वत, गम्भीर अचल जो सहज चैतन्य प्रतिभास है यह है मेरा परमगुरु। इसका आश्रय लें। तो ये सब बातें तब ही तो समझ में आयेंगी कि पहले विधान अनुयोग द्वारा इस जीव की विशेषताओं को समझ लें।

शंकाकार द्वारा कहे गए "सत्ताका अविशेषत्व' हेतु से ही नाना द्रव्यों की प्रसिद्धि—यहाँ यह कहा है कि जो लोग ऐसा कहते हैं कि विश्व एक है क्योंकि सत्ता की विशेषता नहीं है, तो ऐसा कहने वाले केवल प्रलाप कर रहे हैं। न उनके अनुभव में कुछ आता न श्रोताओं के अनुभव में कुछ आता तो स्पष्ट बात है कि प्रत्येक वस्तु द्रव्य से स्वभाव से, एक रूप है और अवस्थाओं के भेद से नाना रूप हैं, तब ही तो जगत की व्यवस्था है। अन्यथा जैसे क्षणिकवादियों ने यह माना कि क्षण क्षण में जो जो गुजर रहा है बस एक ही समय का इतना ही सब कुछ है, आगे पीछे कुछ नहीं है। इसने छोड़ दिया द्रव्य को, तो ब्रह्माद्वैतवादियों ने द्रव्य को ऐसा ऊंचा तानकर पकड़ा कि सारा विश्व एक है, उसमें कोई तरंग ही नहीं। तो भाई तरंग बिना अर्थ नहीं, अर्थ बिना तरंग नहीं। समझना पड़ेगा सब कुछ कितने प्रकार हैं, और उन प्रकारों में रहने वाला मूल तत्त्व एक है। दोनों बातें ध्यान में लानी होंगी परिचय जो बनता है उस परिचय का विस्तार होता है तो वह होता है एक विधान अनुयोग द्वारा याने पर्यायदृष्टि से, और उसमें भी उपादेय तत्त्व समझा जाएगा एकत्व। शंकाकार ने जो यह कहा था कि सब कुछ एक है, क्योंकि सत्ता की विशेषता नहीं, सत्ता जिसे भी देखो यह भी सत्, यह भी सत्। किसी भी पदार्थ को देखकर आप यह तो नहीं कहते कि यह नहीं है सत्, सत् तो यह है। जब सभी सत् हैं, सभी अस्तित्व हैं तो फिर उनमें फर्क क्या ? सब एक हैं। ऐसा जो शंकाकार ने कहा है तो यह हेतु सही नहीं है, क्योंकि कहते हो क्या कि सत्ता की समानता है तो सत्ता की समानता तब ही तो कह सकेंगे जब नाना पदार्थ हों। जैसे २० गायें खड़ी हैं तो उन्हें देखकर ही तो कहेंगे कि इन सब गायों में गुण की समानता है। सब एक ही प्रथम श्रेणी की गायें हैं, तो जब नाना दीखीं तब ही तो उसमें एक समानता की बात ला सके। तो ऐसे ही सारा जगत नाना तरह का है तब ही तो उसमें सत्ता की समानता कह सकते। जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, अनन्तानन्त पदार्थ हैं उन सब पदार्थों में सत्ता की अविशेषता है। सत्त्व सब में है। तो यह बात तब ही कह सकेंगे जब पहले कुछ नाना पदार्थ मान लें। जब नाना पदार्थ मान लिया तो भेद, प्रभेद, विधान अनुयोग सिद्ध हो ही गया तो यों पदार्थ का परिचय विधान के द्वारा होता है।

नाना पदार्थों के मानने पर ही सत्ता की अविशेषता की सिद्धि शंकाकार जो यह कह रहा था कि सत्त्व की अविशेषता है, समानता है। तो समाधान में क्या कहा था कि जब तक नाना पदार्थ न मान लें तब तक सत्ता समान है यह नहीं बोल सकते। तो इसके उत्तर में शंकाकार यह कहता है कि इस सत्ता की अविशेषता का अर्थ एकत्व मानना साधर्म्य न लेना कि इस पदार्थ में भी वैसी ही सत्ता है, इसमें भी वैसी सत्ता है, ऐसा समानता का अर्थ नहीं है किन्तु सत्ता की अविशेषता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का अर्थ है कि सत्त्व एक है तब तो नाना अर्थ मानने की जरूरत न पड़ेगी। तो उत्तर में कहते हैं कि यहाँ तो एक ही बात बोल दी। साध्य भी वही, हेतु भी वही। कोई कहे कि यह चौकी है चौकी होने से, तो इसमें कुछ सिद्धि हुई क्या? अग्नि है अग्नि होने से, तो इससे कुछ मतलब निकला क्या? हाँ कोई कहे कि यहाँ अग्नि है धुआँ होने से तब ज्ञान की बात बतायी तुमने। अग्नि को हम जान नहीं रहे थे और धुआँ देखकर हमने अग्नि जाना, पर कोई कहे कि यह अग्नि है अग्नि होने से तो इससे कोई सिद्धि नहीं बतायी। तो ऐसे ही कहा गया कि सारा जगत् एक सत् है, क्योंकि एक सत् होने से। तो इससे कोई सिद्धि न बनी। यह तो साध्य समान हेतु बन गया। सत्ता की समानता, अविशेषता तब ही समझ सकेंगे जब हम नाना पदार्थों को पहले समझ लें। देखो यहाँ कराना है जीव का परिचय, सम्यक्त्व का परिचय। कैसे समझा जाये उस तत्त्व का परिचय? तो वह परिचय होता है जिन विधियों से उन विधियों की बात कही जा रही है। अगर यह बात कोई ज्यादह कठिन लगती हो तब इतना तो अन्दाज कर लो कि हम तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ जाते हैं सारा का सारा मगर उसमें इतने अर्थ भरे हैं, इतनी विभूतियाँ पड़ी हैं कि पढ़ने वाले लोग उनमें से कुछ भी नहीं समझते हैं। समझना कठिन नहीं है आत्महित, सामान्य रूप से कोई अर्थ समझ लेने का महत्त्व अधिक नहीं होता है। हाँ जो विशेष रूप से सब कुछ समझे हुये हैं वह स.मान्य से समझे तो महत्त्व है, मगर जो अज्ञानीजन हैं, जिन्हें कुछ समझ नहीं है तो वे सामान्य से समझेंगे क्या? और जो विशेष बतायेंगे तो वह भेद प्रभेद करके ही बताया जा सकेगा। तो विधान अनुयोग के द्वारा तत्त्व का परिचय करना चाहिये।

विधान अनुयोग की उपयोगिता—विधान अनुयोग की चर्चा के प्रसंग में ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि विधान की, भेद की कोई जरूरत नहीं है। सारा विश्व एक है, क्योंकि सत्ता की विशेषता नहीं है तो उनकी यह बात प्रकट असिद्ध है। जब सामने दिख रहे कपड़ा है, घड़ी है, चटाई है, जब भिन्न-भिन्न सत्ता समझ में आ रही है तो हम यह कैसे मानें कि सारी सत्ता एक है? यदि कहो कि यह प्रतीति मिथ्या है - घड़ी है, चटाई है, पशु पक्षी हैं ये जो भिन्न-भिन्न हैं, तो क्या यह झूठा ज्ञान है स्वप्नादिक की तरह? तो इसका उत्तर कितना युक्तिपूर्ण है कि भला यह बतलाओ कि जब तुमने एकमात्र सत् माना है तो एकमात्र सत् मानने वाले के यहाँ यह सच्ची प्रतीति है, यह झूठी प्रतीति है—यह भेद बन ही नहीं सकता। अगर यह भेद बन जाये कि यह सच्ची बात है, यह झूठी बात है तो कम से कम तुमने भेद मान लिया ना और उसी भेद की बात हम कह रहे हैं कि तत्त्व का परिचय तो भेद की समझ से होता है। तो इस अनुयोग में भिन्न-भिन्न भेद बताकर वस्तु का तत्त्व का ज्ञान कराया जायेगा और उस अनुयोग द्वारा जैसे हमने समझा त्रस, स्थावर, मुक्त जीव, संसारी जीव तो सारे भेद समझने के बाद हमें इस दृष्टि में आना होगा कि इन सब जीवों में जो मूल स्वरूप है वह सब एक चैतन्यमात्र है। जिस मूल तत्त्व का अनुभव न होने से यह जीव जगह जगह डोल रहा है, और जन्म-मरण कर रहा है। तो विधान अनुयोग द्वारा वस्तु का परिचय करके अपने प्रयोजन में आने का अवसर मिलता है अतः विधान अनुयोग वस्तु परिचय में बहुत उपयोगी है।

भेद प्रतीति बिना यथार्थता आदि का भी निर्णय न हो सकने से विधान अनुयोग की उपयोगिता की सुप्रसिद्धि—विधान अनुयोग में पदार्थों के प्रकार की चर्चा चल रही है, अर्थात् पदार्थ नाना हैं और उनके भी बहुत से भेद प्रभेद हैं। इस विषय में ब्रह्माद्वैतवादी को आपत्ति हुई। उनका कहना है कि सर्व कुछ एक है, दूसरा कुछ है ही नहीं। तो इस सम्बन्ध में कुछ विचार करने के बाद

http://sahjanandvarnishastra.org/

जब यह समस्या सामने आयी कि जब जगत के इतने पदार्थ दिख रहे हैं, जो अनुभव में आते हैं उनका लोप कैसे किया जाये ? तो इसके उत्तर में ब्रह्माद्वैतवादी ने यह कहा कि यह सब मिथ्या प्रतीति है। और, मिथ्या प्रतीति अविद्या कहलाती है और अविद्या का कोई रूप नहीं होता है। अविद्या में ग्राह्य आकार नहीं रहता है। जैसे कुर्सी ज्ञान में आयी तो कुर्सी ग्राह्याकार कहलायी। जो चीज ज्ञान में आयी उसे ग्राह्याकार बोलते हैं। जो ग्रहण में आ सकने योग्य है ऐसा आकार पदार्थ। ऐसा ग्राह्याकार परमार्थ संवेदन में नहीं है। तो अविद्या नीरूप है अर्थात् उसका कोई आकार नहीं होता। जब किसी पदार्थ का कोई आकार नहीं आया ज्ञान में और ज्ञान हुआ कुछ तो वह भी सत्तामात्र है। तो जो हमारा मूल कथन था कि सारा विश्व एक ब्रह्मरूप है तो मिथ्या प्रतीति भी ब्रह्मरूप है, इसलिये यद्यपि दो बातें सामने आयीं कि एक मिथ्या प्रतीति हुई और एक समीचीन प्रतीति हुई, किन्तु सबका सब एक सत् है और सम्वेदनमात्र है। इसके उत्तर में कहते हैं कि यह कथन तो प्रतीति विरुद्ध है। जब यह सारी प्रतीति स्वयं हो रही तो उसको नीरूप कैसे कहेंगे ? याने इस प्रतीति में कोई पदार्थ ज्ञान में नहीं आया, किन्तु प्रतीतिमात्र है यह कैसे कहा जाये ? स्पष्ट सब चीज विदित हो रही है। अगर यह कहें कि अद्वैतवादी की उस प्रतीति में ग्राह्यरूप नहीं, ग्राह्यरूप का अर्थ है कि जो पदार्थ ज्ञान में आया उसका जो कुछ ढांचा है जो ज्ञान में, समझ में आया है उसको कहते हैं ग्राह्य रूप। तो ग्राह्यरूप नहीं है इस कारण से अगर मिथ्या प्रतीति नीरूप हो जाये ऐसा अद्वैतवादी कहें तो इसके मायने यह हो गया कि जिस प्रतीति में ग्राह्यरूप हो वह प्रतीति सच्ची और जिस प्रतीति में ग्राह्य रूप नहीं वह प्रतीति मिथ्या। तो दो बातें सामने आ गईं। अद्वैतवादी तो दो नाम से ही चिढ़ता है। दुनिया में दो चीजें कुछ नहीं हैं। सब कुछ एक है ब्रह्मस्वरूप सम्वेदनमात्र। तो अब यहाँ दो बातें तो आ गईं। देखो सच्ची तो ग्राह्यरूप सहित हो गयी और मिथ्या प्रतीति ग्राह्यरूप रहित हो गयी। ग्राह्यरूप का अर्थ क्या ? जो ज्ञान में आकार आया उसको कहते हैं ग्राह्यरूप। तो यहाँ तक इतनी बात सामने आयी कि सच्ची प्रतीति में तो ग्राह्यरूप रहता है और मिथ्या प्रतीति में ग्राह्यरूप नहीं रहता, तो ये दो बातें सामने हो गईं। अब अद्वैतवाद तो न रहा। इस पर अद्वैतवादी कहते हैं कि जो सच्ची प्रतीति है वह भी ग्राह्यरूप से रहित है। सच्ची प्रतीति में भी यह कुछ ग्राह्य रूप नहीं है क्योंकि यह कुछ है ही नहीं। वहाँ पर केवल ज्ञान होता है। उसमें कोई ग्राह्य आकार नहीं आता। ऐसा कहने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि देखो तुमने यह माना कि मिथ्या प्रतीति हो उसमें भी ग्राह्यरूप नहीं है और सच्ची प्रतीति हो तो उसमें ग्राह्यरूप नहीं है। तो जब ग्राह्यरूप दोनों में नहीं है तो यह निर्णय कैसे हो कि यह तो है मिथ्या प्रतीति और यह है सच्ची प्रतीति। जब जानने योग्य पदार्थ दोनों में नहीं आ रहे, केवल सम्वेदनमात्र है, जानन ही जानन है, कोई दूसरी चीज नहीं आती तो यह कैसे निर्णय हो सकता है ? मिथ्या प्रतीति और सम्यक् प्रतीति, इनमें कुछ सच्ची कुछ झूठी यह व्यवस्था कैसे बनेगी ? यदि कहो कि जो सच्ची प्रतीति है, सन्मात्र प्रतीति, मात्र सत् है। कोई पदार्थ का नाम न लेना नहीं तो वह मिथ्या हो जायेगा। दुनिया में दूसरा कुछ भी नहीं है, ऐसा सिद्धान्त है अद्वैतवादियों का, तो सन्मात्र प्रतीति केवल सत्ता मात्र का ज्ञान यह स्वरूप से ही सच्चा है, इस कारण सच्चा है तो कहते हैं कि भेद प्रतीति भी स्वरूप से सच्ची है। जो यह समझ में आ रहा है कि किवाड़ है, चौकी है, मकान है, पुरुष है, पशु है तो यह है तो यह भी तो सच्चा हो रहा है और अगर यह कहें कि मिथ्या प्रतीति में ग्राह्यरूप नहीं है इसलिए मिथ्या है। तो सन्मात्र प्रतीति में भी ग्राह्य रूप नहीं है इसलिये वह भी मिथ्या रहा। तो भेद पड़े

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बिना सच्चे झूठ का निर्णय नहीं बन सकता, इस कारण सत्ता मात्र ही दुनिया में तत्त्व है यह बात अयुक्त हो गयी। सब कुछ है, अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त अणु हैं, एक धर्म द्रव्य है, एक अधर्म द्रव्य है, एक आकाश द्रव्य है, असंख्यात काल द्रव्य है। यों अनन्तानन्त पदार्थ हैं और उनका परिज्ञान करें विधान के द्वारा, भेद प्रभेद करने के द्वारा। जैसे निर्देश से, ज्ञान से, पदार्थ का स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति से ज्ञान किया इसी प्रकार विधान अनुयोग के द्वारा भी उन सबका ज्ञान करना चाहिये।

छहों अनुयोगों में ज्ञानात्मक अनुयोग से अर्थात्मक अनुयोग के अधिगम का दिग्दर्शन— यहाँ तक इतनी बात आयी कि छठे सूत्र से तो आया कि प्रमाण और नयों के द्वारा तत्त्व का अधिगम होता है। प्रमाणनयैरधिगम। सो यह तो मात्र ज्ञानात्मक उपाय है। और ७वें सूत्र में आया निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से अधिगम होता है, तो इस ७वें सूत्र के दो तरह के अर्थ हैं— एक तो प्रमाणात्मक व नयात्मक अथवा कहो ज्ञानात्मक। निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान उनके द्वारा तत्त्वों का ज्ञान होता है. एक तो यह अर्थ, दूसरा कर्मविधि से अर्थ है। जो पदार्थ निर्देश में आ सकता है उसका ज्ञान। जिसके बारे में स्वामित्व जाना, साधन, अधिकरण, स्थिति और भेद जाना, उन पदार्थों का ज्ञान होता है। एक में है ज्ञान की मुख्यता याने करण साधन और एक अर्थ में है पदार्थ की मुख्यता याने कर्मसाधन है। इस सूत्र का उपसंहार करते हुये थोड़ा एक बार अर्थ और समझिये।

निश्चयात्मक, व्यवहारात्मक व प्रमाणात्मक अनुयोगों से तत्त्व परिचय का उदाहरण — निश्चय और व्यवहार दो तरह से पदार्थों का ज्ञान होता है। तो निर्देश आदिक जो ६ अनुयोग हैं इनका भी निश्चय से व्यवहार से और प्रमाण से तीन-तीन तरह से ज्ञान होगा। तो यों १८ भेद हो गये। तीन तरह के निर्देश, निश्चयात्मक निर्देश, व्यवहार वाला निर्देश और प्रमाण वाला निर्देश, ऐसे ही प्रत्येक अनुयोग तीन तरह से हैं। तो अब इन १८ की बातें सुनो—निश्चय से जैसे मानो जीव का निर्देश करना है तो जीव का परिचय १८ तरह से करें। निश्चय से जीव कैसा है? तो निश्चय से यह अनादि अनन्त पारिणामिक चैतन्य स्वरूप है। शुद्ध जीवत्व में आया हुआ है। यह तो जीव का निश्चय से निर्देश हुआ। जिसे कहते अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्य स्वभावमय, ऐसा जीव को बताया तो वह कहलाया निश्चय निर्देश। व्यवहार निर्देश—जीव औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक इन चार भाव से सहित है। यह हुआ व्यवहार निर्देश। व्यवहार निर्देश ने तो पर्याय को बताया और निश्चय निर्देश ने जीव के सहज स्वभाव को बताया और प्रमाण से ये दोनों निर्देश एक समान जानें तो वह कहलायेगा प्रमाण से निर्देश। अब स्वामित्व देखिये—जीव निश्चय से किसका स्वामी है? तो कहा जायेगा कि अपने सहज भाव का स्वामी है। यह हुआ निश्चय स्वामित्व अथवा अपने आत्मा का स्वामी है। औदयिक आदिक जो भाव हैं वे भी जीव के स्वतत्त्व कहे गये हैं, क्योंकि परिणाम तो जीव के ही हैं। तो उन्हें भी कह सकते कि निश्चय से जीव अपने परिणाम का स्वामी है और व्यवहार से सबका स्वामी है, शरीर का स्वामी, जिस जगह पैदा हुये उस भूमि का स्वामी। जो जो भी मानें, कुछ उपचार से स्वामी और कुछ सम्बन्ध से स्वामी। और प्रमाण से दोनों प्रकार का स्वामित्व ज्ञान में हो तो वह प्रमाण से स्वामित्व है। साधन निश्चय से जीव का साधन क्या है? तो जीव का साधन जीवत्व है, जीवत्व भाव से ही यह जीव बना है, यह अन्य साधन से नहीं बना, और व्यवहार से

http://sahjanandvarnishastra.org/

औपशमिक आदिक इनका भाव साधन है। जीव होगा तो किसी न किसी पर्याय में तो होगा। पर्याय-रहित जीव हो नहीं सकता। तो जीव की जब जो पर्याय हुई तब जीव उन साधनों से बना हुआ है यों कह सकते। प्रमाण से दोनों दृष्टियों से जो जचा सो प्रमाण से स्वामी है। अधिकरण—अधिकरण के द्वारा जीव का परिचय करें तो उसमें भी तीन बातें हैं–निश्चय व्यवहार, प्रमाण अधिकरण। तो निश्चय से जीव के अधिकरण हैं आत्मा के प्रदेश याने आत्मा कहाँ रहता है ? यह प्रश्न हुआ तो निश्चय से उत्तर होगा कि जीव अपने प्रदेश में रहता है और व्यवहार से जीव कहाँ रहता है ? तो उत्तर होगा कि शरीरादिक में रहता है, और प्रमाण से दोनों प्रकार के उत्तर हैं, समान रूप से। स्थिति अनुयोग से यह समझा जाता है कि जीव की स्थिति कितनी है, जीव कब तक रहता है ? तो निश्चय से जीव सदा रहता है। जब तक जीवत्व भाव है तब ही तक रहता है। और व्यवहार से रहता है। दो समय, तीन समय, चार समय, वर्ष, सागरों पर्यन्त रहता है, अथवा आदि से अनन्तकाल तक रहता है। जब जीव जिस पर्याय में गया उस पर्याय की जितनी स्थिति है, व्यवहार से कहेंगे कि यह जीव इतने समय रहा और निश्चय व्यवहार दोनों से जो उत्तर है वही समान दृष्टि से प्रमाण का उत्तर है। अब अन्तिम अनुयोग है विधान। विधान अनुयोग का अर्थ कितनी प्रकार का है ? तो निश्चय से तो अनन्तात्मक है इसलिए अनन्त प्रकार कह लीजिए, और व्यवहार से उनकी जातियाँ बना लीजिए। जैसे मनुष्य संख्यात व असंख्यात हैं, नारकी जीव असंख्यात हैं, देव असंख्यात हैं,और तिर्यञ्च अनन्तानन्त हैं। तो इस तरह नापों से और प्रमाण के द्वारा जीव तत्त्व का इन ६ अनुयोगों के बल से परिचय किया जाता है। इस प्रकार सप्तम सूत्र वस्तु स्वरूप के जानने के उपाय में अवतीर्ण हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com